# बोलती ख़ामोशियाँ

दास्तान बेज़ुबानों की

सृजन गुप्ता

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

**BLUEROSE PUBLISHERS**
India | U.K.

Copyright © Srijan Gupta 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7310-079-1

Cover design: Daksh
Typesetting: Tanya Raj Upadhyay

First Edition: January 2026

# बोलती खामोशियाँ

सृजन की कलम से

# भूमिका:
## पाठक और लेखक की शुरुआती गुफ़्तगू

मैं पहले जिस घर में रहता था, उसकी छत पर जाने के लिए एक पुरानी लकड़ी की सीढ़ी हुआ करती थी। वह सीढ़ी, जो कभी छत तक पहुँचने का रास्ता थी, हमारे बचपन की दुनिया तक पहुँचने का भी ज़रिया बन गई थी — छुपन-छुपाई के खेल, तारों को गिनने की कोशिशें, या बारिश के बाद भीगते हुए आसमान को निहारना।

फिर वक़्त बदला। उस घर में पक्की सीढ़ियाँ बन गईं, फिर हम नए घर में आ गए। लेकिन वह पुरानी लकड़ी की सीढ़ी, जो हमारे बचपन का हिस्सा है, आज भी हमारे साथ है — चुपचाप, एक कोने में खड़ी। लेकिन जब भी मेरी नज़र उस सीढ़ी पर पड़ती है, तो ऐसा लगता है कि वह सीढ़ी मुझसे कुछ कहना चाहती है — शायद कुछ शिकायतों और कुछ मासूम यादों का ज़िक्र करना चाहती है।

जीवन की भागदौड़ के बीच अगर कुछ पलों के लिए ठहरकर अपनी नज़रों को आसपास घुमाएँ, तो आपको पता चलेगा कि न जाने कितनी कहानियों और किस्सों के पात्र हमारे आसपास न जाने कब से मौन उपस्थित हैं। उनकी मौजूदगी इतनी ख़ामोश होती है कि उस ख़ामोशी का शोर भी हमारे कानों तक नहीं पहुँच पाता। लेकिन यह ख़ामोशी सतही नहीं होती — इनमें होती हैं गहराइयाँ, और उन

गहराइयों में छुपी होती हैं अनगिनत अनकही कहानियाँ, किस्से, यादें, जीवन के अनछुए और अनकहे वाक़ये।

इनमें से कुछ पात्र निर्जीव होते हैं, तो कुछ अमूर्त। कुछ को हम अपनी आँखों से देख सकते हैं, कुछ का बस नाम सुना है, देखा नहीं; कुछ को हम छू सकते हैं, और कुछ केवल महसूस कर सकते हैं।

अगर इन निर्जीव और अमूर्त पात्रों को सजीवता का वरदान मिल जाए, उनको अपनी बात कहने की, भावनाओं को व्यक्त करने की शक्ति मिल जाए — तो वे क्या कहेंगे?

यही कल्पना इस पुस्तक का आधार है। यह प्रयास है उन मूक पात्रों को एक आवाज़ देने का, उनकी भावनाओं को कहानी, संवाद, आत्मसंवाद, संस्मरण, जीवन-वृत्तांत के रूप में आप तक पहुँचाने का, जिनका हमारे रोज़मर्रा के जीवन से गहरा जुड़ाव है।

और ऐसा नहीं है कि इन रचनाओं में हमारी कोई जगह नहीं। कई रचनाओं को इस तरह से बुना गया है कि या तो मानवीय पात्र महत्वपूर्ण सहायक भूमिकाओं में हैं, या फिर रचना का परिदृश्य किसी मानव जीवन के चारों ओर घूमता है।

कलम की स्याही को शब्दों के रूप में पिरोने का मेरा पहला प्रयास है। पुस्तक पढ़ते समय आपको कहीं-कहीं भाषागत त्रुटियाँ अवश्य मिलेंगी — मैं उनके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। इन रचनाओं में आपको हिंदी, उर्दू और कहीं-कहीं अंग्रेज़ी के शब्दों का संगम देखने को मिलेगा।

इस किताब को पढ़ते समय आपसे एक अनुरोध है: हर अध्याय को पढ़ते हुए जो चित्र आपके मन में उभरें, उन्हें उभरने दीजिए। उन चित्रों को उभरने से रोकिए मत — वे चित्र आपकी स्मृतियों, अनुभवों और भावनाओं से निकलकर आएँगे, और यही इस किताब का असली आनंद होगा। हर पाठक के मन के चित्र अलग होंगे — और यही इस यात्रा की ख़ास बात है।

यह किताब कभी आपके चेहरे पर मुस्कान लेकर आएगी, तो कभी आपकी पलकों को गीला करेगी, तो कभी आपको बचपन की गलियों में ले जाएगी, और शायद कभी आपको ठहराव का अनुभव कराएगी — बहरहाल, अगर इनमें से कोई एक रचना भी आपको थोड़ी देर के लिए रुकने, सोचने या महसूस करने पर मजबूर कर दे — तो मैं मानूँगा कि मेरी कलम ने सही दिशा पकड़ी है।

आपके सुझाव, प्रतिक्रियाएँ और मार्गदर्शन मेरे लिए अनमोल होंगे — ताकि यह लेखन यात्रा केवल मेरी न होकर हमारी साझा यात्रा बन सके।

# अनुक्रमणिका


| | |
|---|---|
| १- यात्रा का पड़ाव | २ |
| २- ऋतु | ८ |
| ३- राज़दार | १८ |
| ४ - खुशियाँ बटोर लो | २४ |
| ५- वो एक साल | ३० |
| ६- बाप और बेटी | ३६ |
| ७- राम का पन्ना | ४४ |
| ८- दीवार में एक कोना | ५२ |
| ९- उदास बालक | ५६ |
| १० - तोहफ़ा, तोहफ़े को | ६० |
| ११- बारह जज़्बात | ६८ |
| १२- अंतिम पत्र | ७६ |
| १३- काग़ज़ी मोहब्बत | ८४ |
| १४- दो महबूब | ८८ |
| १५- सूनी माँग | ९२ |

| | |
|---|---|
| १६ - सपनों की सैर | ९८ |
| १७- यादों का पिटारा | १०६ |
| १८- वो एक दिन | ११४ |
| १९- मोहब्बत की इलायची | ११८ |
| २० - सुंदरता | १२६ |
| २१- गाँव की दहलीज़ | १३२ |
| २२- दस्तक | १३८ |
| २३- चुड़ैल | १४४ |
| २४- साज़िश | १५० |
| २५- जादूगरनी | १५८ |
| २६- कहानी का सिरा | १६६ |
| २७- घर से मकान तक (एक सफ़र) | १७२ |

# १- यात्रा का पड़ाव

मेरी भी अजब क़िस्मत है। जब से इस दुनिया में आई हूँ, बस चलती जा रही हूँ। रात, दिन, सुबह, शाम—सालों साल, दुनिया की गति से परे मैं चलती जा रही हूँ। शायद अनंत काल तक बिना थके, भूख-प्यास की परवाह किए बिना, एक निश्चित गति से चलना ही मेरी नियति है। चाहे पूरी दुनिया सोए या जागे, मेरी गति का मंद होना असंभव है।

कुछ समय पहले तक, जब मैं थकी हुई होती, लेकिन न चाहते हुए भी अपनी गति को विराम न दे पाती, तब मेरे शरीर का रोम-रोम एक लंबी सवालों की फ़ेहरिस्त लिए मेरे मन के दरवाज़े खटखटाया करता था। और वे सवाल कुछ यूँ होते:

क्या मैं कभी किसी पल में ठहर कर उस पल का आनंद नहीं ले सकती?

क्या एक पल के लिए गतिहीन होकर अपनी अनंतकाल की यात्रा में विश्राम नहीं कर सकती?

क्या मैं अपनी यात्रा के पड़ाव ख़ुद निर्धारित नहीं कर सकती?

लेकिन इन सवालों का सैलाब भी मेरी गति को मंद नहीं कर पाता था।

ख़ैर, एक दिन नियति ने मेरे साथ एक ऐसा खेल खेला कि मेरे सारे सवालों के जवाब एक झटके में मेरे सामने आ गए। हुआ कुछ यूँ कि एक दिन चलते-चलते पता नहीं कैसे मेरी गति धीरे-धीरे कम होने लगी। लेकिन उस समय न तो मैं थकावट महसूस कर रही थी, न ही ऐसा मैं स्वेच्छा से कर रही थी। फिर धीरे-धीरे, अनंत काल के बाद, मेरे सफ़र का एक पड़ाव आया, जब मैं पूरी तरह से रुक चुकी थी। मेरी सुइयाँ अपने निर्धारित स्थानों से हट चुकी थीं, और वे भी एक स्थान पर खड़े होकर इस अनचाहे ठहराव की साक्षी बन रही थीं।

यह सब देखकर मैं ख़ुश तो हो रही थी, लेकिन साथ में एक बैचैनी भी थी।

हाँ, यह सच है कि ठहराव के जिन पलों का स्वप्न मैं अक्सर देखा करती थी, वह पूरा तो हो रहा था, लेकिन इस स्वप्न को पूरा करने का समय मैंने निर्धारित नहीं किया था।

बहरहाल, मैं ठहराव के इन पलों को खुलकर जी लेना चाहती थी।

लेकिन मैं इस बात से अंजान थी कि इन पलों का भयानक स्वरूप अभी आना बाक़ी था।

और फिर अचानक से हुआ यह कि जिस दीवार पर मैं होश संभालने से पहले से टँगी हुई थी, वहाँ से मुझे उतार लिया गया। और जिस मनुष्य ने मुझे उतारा, उसके मुँह से जो शब्द निकले, उन्हें सुनकर मेरे होश उड़ गए।

और वो शब्द थे—

“लगता है कि यह घड़ी अब ख़राब हो चुकी है। इसे यहाँ से हटाना पड़ेगा और एक नई घड़ी लाकर लगानी पड़ेगी।”

ठहराव के इन पलों के दौरान जो बैचैनी मुझे हो रही थी, उसके कारण अब मुझे समझ आने लगे थे।

मैं समझ चुकी थी कि ठहराव के जिन पलों को मैं अपनी ज़िंदगी के सबसे हसीन पल मान रही थी, जिनका इंतज़ार मैं अनंत काल से कर रही थी—असल में वे और कुछ नहीं, बल्कि मेरे जीवन के अंतिम पल थे।

हाँ, मेरा अस्तित्व कुछ ही क्षणों में समाप्त होने वाला था।

मेरी सोचने-समझने की शक्ति क्षीण हो रही थी।

मैं ख़ुद को कोसे जा रही थी—आख़िर क्यों देखा ऐसा दुःस्वप्न? क्यों अपनी बर्बादी को अपनी मंज़िल मानकर चल रही थी?

सुबह से शाम हो गई थी। वह मनुष्य एक बार फिर आया, और मैं अपनी अंतिम साँसों की आहट को महसूस कर पा रही थी। उन पलों में मेरी अनंतकाल की संपूर्ण यात्रा मेरी आँखों के सामने से होकर निकल रही थी। वे पल भी, जिनमें मैंने ठहराव का वह मनहूस सपना देखा था।

अपनी नियति को स्वीकार कर, मैंने अपनी आँखें बंद कर लीं।

बंद आँखों से मैंने महसूस किया कि इस बार उस मनुष्य ने मुझे उठाकर मेरे पीछे कुछ ऐसा किया, जो मुझे समझ तो नहीं आया, लेकिन उसने कुछ ऐसा कर दिया कि मेरी उखड़ती साँसों को बल सा मिला। मेरी सुइयाँ,

जो गतिहीन होकर अपने पथ पर मूर्छित पड़ी थीं, एकाएक होश में आकर गतिशील होने लगीं।

और उस मनुष्य ने एक और जादू किया—मेरी सुइयाँ, जो ठहराव के कारण अपने पथ से भटक गई थीं, अपने-आप अपनी जगह पर पहुँच गईं।

मेरी अनंतकाल की यात्रा फिर से शुरू हो चुकी थी।

ठहराव के पलों का यह दुःस्वप्न धीरे-धीरे मेरी आँखों से ओझल हो रहा था।

और अभी कुछ देर पहले तक जो मैं अपने अस्तित्व के समाप्त होने का इंतज़ार कर रही थी, अब फिर से नियति की योजनाओं के मुताबिक संपूर्णता का अनुभव कर रही थी।

*और अभी कुछ देर पहले तक जो मैं अपने अस्तित्व के समाप्त होने का इंतज़ार कर रही थी, अब फिर से नियति की योजनाओं के मुताबिक संपूर्णता का अनुभव कर रही थी।*

उस मनुष्य ने मुझे वापस उसी जगह टाँग दिया था।

और टाँगने के बाद, मेरे सामने खड़े होकर मुझे देखते हुए मुस्कुरा रहा था।

उस समय अगर मुझसे कोई पूछता कि तुमने कभी ईश्वर को देखा है?

तो मेरा जवाब होता—हाँ, बिल्कुल। और मेरा ईश्वर अभी मेरे सामने खड़ा मुस्कुरा रहा है।

और इस सब के बाद, मुझे एक बात समझ आ चुकी थी—यह सब और कुछ नहीं बल्कि नियति के द्वारा लिखी गई एक पटकथा थी, जिसमें मेरा किरदार मुख्य था और इतनी ही देर का था।

मुझे मेरे सारे सवालों के जवाब मिल चुके थे।

मैं समझ चुकी थी कि अनंतकाल की यह यात्रा ही मेरी नियति है, मेरा सुख है, मेरा अस्तित्व है, मेरा स्वप्न है।

ठहराव, मेरी यात्रा का पड़ाव नहीं, बल्कि मेरा अंत है।

अनंतकाल तक बिना थके चलना ही मेरे यात्रा के पड़ाव हैं।

और मेरी सुइयों को सही समय पर, सही जगह पहुँचाना ही मेरा कर्तव्य है।

# २-ऋतु

कुछ लोगों को नए-नए दोस्त बनाने का शौक़ होता है, और मेरा भी नाम उन कुछ लोगों की फ़ेहरिस्त में दर्ज है। मुझे भी इस शौक़ की आदत-सी लग चुकी है। और समय मेरा वो साथी है जो मेरे इस शौक़ को पूरा करने में मेरी मदद करता है। समय हर चंद महीनों के बाद मेरी मुलाक़ात अपने किसी एक नए दोस्त से करवाता रहता है। लेकिन समय की एक शर्त रहती है—जब भी वो मुझे अपने किसी नए साथी से मिलवाएगा, तब मुझे उस पुराने साथी को भूलना होगा जिसे समय ने मुझे इससे पहले मिलवाया था।

मेरी कहानी में मेरा एक और दोस्त है जिसका नाम है सूरज। सूरज मेरे सुख-दुख का साथी है, जो मेरा कभी साथ नहीं छोड़ता। सूरज और मेरी दोस्ती समय की शर्त से परे है। लेकिन शर्त तोड़ने की मेरी ये गुस्ताख़ी समय को कोई ख़ास पसंद नहीं है।

बीते सावन में समय ने मुझे बरखा से रूबरू करवाया था। बरखा की शख़्सियत कुछ ऐसी थी जैसे मानो वह कोई परी हो जो खुशियाँ बाँटती हो। बरखा की मौजूदगी ही फ़िज़ाओं में हरियाली घोलने के लिए काफ़ी थी। पता नहीं क्या था उसमें—कहीं भी जाती, तो हर कोई उसका स्वागत करता, ख़ुशी में नाचने लगता, यूँ लगता मानो ये पूरी कायनात पलकें बिछाए केवल मेरी उस नई दोस्त बरखा का इंतज़ार कर रही हो।

बरखा की एक ख़ासियत थी—वह सभी को बराबर चाहती थी, किसी के साथ भेदभाव नहीं करती थी। उसकी झोली में जो भी होता, जितना भी होता, लाकर सब में बराबर बाँट देती थी।

बरखा और मैं पूरे दिन बैठकर गप्पें मारा करते। कभी कोयल से कोई गाना सुनते, कभी आसमान में दोनों मिलकर सतरंगी धनुष का चित्र बनाते। और ऐसे ही हँसते-खेलते दिन गुज़र रहे थे।

और अचानक एक दिन मेरे दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी। जब झरोखे से मैंने बाहर देखा, तो पाया कि बाहर समय खड़ा था—उसके साथ कोई और भी था।

वैसे तो जब भी समय आता था, उसे देखकर मुझे बहुत खुशी होती थी, क्योंकि समय के आने का मतलब था मेरी किसी नए शख़्स से दोस्ती, ढेर सारी नई बातें, ढेर सारी नई शरारतें। लेकिन इस दफ़ा मुझे समय को देखकर कोई ख़ास खुशी नहीं हुई।

मैं बरखा के साथ और समय बिताना चाहती थी। लेकिन मेरे चाहने से कुछ नहीं होना था—बरखा और मेरे बिछड़ने का समय शायद आ चुका था।

बहरहाल, समय के साथ जो दूसरा शख़्स था उसका नाम शरद था। आज भी मुझे वो पल याद है, जब समय ने शरद का मुझसे परिचय कुछ इस अंदाज़ में करवाया था—

समय: “ये है मेरा बहुत पुराना साथी शरद! एक ठंडी हवा का झोंका।”

शुरुआत में तो शरद और मैं ज़्यादातर ख़ामोश रहते थे, क्योंकि मैं अभी भी अपनी सहेली बरखा की यादों में खोई रहती थी। शरद ने भी बातचीत के लिए कोई उतावलापन नहीं दिखाया। दिवाली के आसपास मैंने शरद की दोस्ती का रंग ख़ुद पर चढ़ते हुए महसूस किया। जैसे समय ने उसका परिचय कराया था—"ठंडी हवा का झोंका", बस समझ लो, उसकी मौजूदगी ही एक खुशनुमा ठंडा एहसास कराती थी। उसकी संगत का जादू कुछ ऐसा था कि उससे बात करते-करते पता ही नहीं चलता था कि कब शाम हो गई।

एक दिन शरद ने मुझसे कहा कि उसे कुछ ज़रूरी काम आन पड़ा है, इसलिए कल उसे जाना पड़ेगा। उसने बताया कि उसने समय को भी बता दिया है इस बारे में, वो किसी न किसी को भेज देगा मेरे पास। मैंने शरद को कोई जवाब नहीं दिया और चुपचाप सोने चली गई।

सुबह उठी तो देखा कि शरद तो था ही नहीं। शायद वो जा चुका था। लेकिन बाहर, घर के आँगन में एक नया शख़्स बैठा था।

मैं उससे कुछ पूछती, उससे पहले वही बोल पड़ा: "नमस्ते! मेरा नाम हेमंत है, और मुझे समय ने भेजा है यहाँ कुछ दिन बिताने के लिए। मैं आपको पहले ही बता देता हूँ, मैं यहाँ एक महीने ही रुक पाऊँगा।"

हेमंत को देखा तो मैं हैरान रह गई। वह हूबहू बिल्कुल शरद की तरह लग रहा था—बिल्कुल वैसे ही नैन-नक्श, क़द-काठी, और बिल्कुल वही बात करने का अंदाज़। उसकी मौजूदगी भी शरद की तरह या उससे थोड़ी सी ज़्यादा खुशनुमा ठंडक का एहसास करा रही थी।

ख़ैर, हेमंत के साथ वह एक महीना कैसे निकल गया, पता ही नहीं चला। उसके साथ रहकर मुझे कभी शरद की याद नहीं आई, क्योंकि मेरे लिए तो वह मेरा शरद ही था, हेमंत नहीं।

*बरखा की एक ख़ासियत थी—वह सभी को बराबर चाहती थी, किसी के साथ भेदभाव नहीं करती थी। उसकी झोली में जो भी होता, जितना भी होता, लाकर सब में बराबर बाँट देती थी।*

एक दिन मैं और हेमंत किसी तालाब किनारे टहल रहे थे, वहीं हमारी मुलाक़ात समय से हुई। उसके साथ एक शख़्स था, जिसका नाम शिशिर था। मैं समय को देखकर समझ गई थी कि हेमंत का एक महीना शायद पूरा हो चुका है।

हेमंत वहीं तालाब से ही समय के साथ चला गया। और मैं शिशिर के साथ वापस आ गई।

पता नहीं क्यों, शुरुआत से ही शिशिर की मौजूदगी मुझे कुछ खटक रही थी। ख़ैर, मैंने इस बात को नज़रअंदाज़ कर दिया और शिशिर से दोस्ती बढ़ानी शुरू कर दी। शुरुआत में उसका व्यवहार बिल्कुल शरद और हेमंत की तरह रहा। लेकिन बाद में हमारे बीच झगड़े होने लगे, और अंततः हाथापाई तक की नौबत आ गई। उसकी मौजूदगी मुझे कुछ यूँ चुभने लगी जैसे किसी ने मुझे बर्फ़ की ईंटों से घायल कर दिया हो। मेरे जिस्म पर फैले ज़ख्म उसके ज़ुल्म की गवाही दे रहे थे।

लेकिन इस बीच मेरा दोस्त सूरज, जो हमेशा मेरे आसपास ही रहता था, उसने मेरा बहुत साथ दिया। उसने अपनी तपिश से उन ज़ख्मों को सहलाया जो शिशिर ने मुझे दिए थे। उससे मुझे बहुत आराम मिला। कुछ देर के लिए ही सही, लेकिन सूरज की वजह से ही मुझे शिशिर के दिए ज़ख्मों के दर्द से राहत महसूस हुई।

लेकिन सूरज को ये दरियादिली महँगी साबित हुई। और एक दिन तो सारी हदें पार करते हुए शिशिर ने न जाने कैसा जादू चलाया कि उसने सूरज को ग़ायब ही कर दिया।

मुझे सूरज की ग़ैर-मौजूदगी का एहसास हो चुका था। दोस्ती के ये रंग मुझसे सूरज की जुदाई का कारण बनेंगे, ये मैंने कभी सोचा न था। और तो और, ये रंग मुझ पर इस क़दर गहरे होते गए कि दिन-ब-दिन मेरी रातें सर्द और स्याह होती चली गईं।

मैं हर पल उस ख़ुशनुमा एहसास को याद कर रही थी जो सूरज के मेरे आसपास रहने से मुझे महसूस होता था। वो एहसास जो शरद की मौजूदगी से मुझे मिलता था, जो मुझे बरखा के साथ समय बिताने में होता था।

ख़ैर, अब मैं कर ही क्या सकती थी सिवाय समय के इंतज़ार के।

समय फिर कब आएगा?

इस नामुराद शिशिर को यहाँ से कब ले जाएगा?

मुझे किस नए दोस्त से मिलवाएगा?

मैं सूरज से फिर कब मिलूँगी?

इन सब सवालों के जवाब का इंतज़ार करते-करते वो दिन आ ही गया जब समय फिर मुझसे मिलने आया। और इस दफ़ा उसने मेरी मुलाक़ात बसंत से कराई। बसंत ने अपना परिचय एक कविता के रूप में कुछ यूँ दिया:

"मैं बसंत हूँ।

मैं अंत भी हूँ, मैं प्रारंभ भी हूँ।

मैं शीत भी हूँ, मैं ग्रीष्म भी हूँ।

मैं श्वेत भी हूँ, मैं पीत भी हूँ।

मैं पतझड़ भी हूँ, मैं नवांकुर भी हूँ।

मैं वर्ष का आगाज़ हूँ।"

बसंत की इस कविता से मुझे हौसला मिला और मेरे अंदर का वो ख़ालीपन जाता रहा जो सूरज के न होने से कायम हुआ था।

और समय की शर्त के अनुसार अब मुझे शिशिर को भूलना था। वैसे तो कौन ही याद रखना चाहता उन कड़वी यादों को! लेकिन जाने-अनजाने ही सही, शिशिर ने मेरी एक मदद की थी—उसके कारण ही मैंने अपने जीवन में सूरज के होने और ना होने के एहसास को महसूस किया था।

मैं शिशिर को धीरे-धीरे जाते हुए देख रही थी। उसके ज़ुल्मों का कड़वा एहसास मेरी रगों में इस क़दर समाया हुआ था कि सूरज की तपिश की पूरी ज़ोर-आज़माइश भी शिशिर के ज़ुल्मों को भूलने नहीं दे रही थी। और

तो और, शिशिर को भूलने की इस क़वायद को और मुश्किल बना रहे थे ठंडी हवा के झोंके।

ठंडी हवा के झोंके और सूरज की तपिश में रंजिश रंग लेने लगी थी। एक ओर ठंडी हवा के झोंके मुझे शिशिर के दिए ज़ख्मों की याद दिलाते थे, वहीं दूसरी ओर सूरज की तपिश मुझे एक नए साथी बसंत से मिलने को बेताब कर रही थी।

ख़ैर, ये रंजिश आज भी जारी है, लेकिन मैं बसंत की आग़ोश में पूरी तरह से गिरफ़्तार हो चुकी हूँ।

ठंडी हवा के झोंके अब भी शिशिर के दिए गए ज़ख्मों का एहसास करा जाते हैं। लेकिन ख़ुशी की बात ये है कि शिशिर से इतर, बसंत को मेरी और सूरज की दोस्ती से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

*ठंडी हवा के झोंके अब भी शिशिर के दिए गए ज़ख्मों का एहसास करा जाते हैं। लेकिन ख़ुशी की बात ये है कि शिशिर से इतर, बसंत को मेरी और सूरज की दोस्ती से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।*

सूरज की हल्की तपिश के बीच बसंत ने मुझे ख़ुश करने के लिए अपनी कोशिशें शुरू कर दी हैं। उसने सुर्ख़ नीले आसमान में सफेद रंग से कुछ अलग-अलग आकृतियाँ बनाई हैं, जो कुछ यूँ लग रही हैं जैसे किसी बच्चे ने आसमानी रंग के कोरे काग़ज़ पर अपनी मासूमियत के निशान सफेद रंग में छोड़े हों।

बसंत के कहने पर ही पेड़-पौधे अपने पुराने पत्तों को अलविदा कह रहे हैं और नए बौरों से ख़ुद को सजा रहे हैं। बसंत ने मेरे लिए खेतों को पीले रंग से सराबोर कर दिया है।

और इन सब से बढ़कर उसने ठंडी हवा के झोंके और सूरज की तपिश के बीच की रंजिश को दोस्ती में बदल दिया है।

और इन सबकी गवाह मैं हूँ, जिसका नाम ऋतु है।

# ३-राज़दार

मेरे अल्फ़ाज़ों को सुनने से पहले आप सभी को मेरे लफ़्ज़ों की एक तुकबंदी झेलनी पड़ेगी, जो कुछ यूँ है—

केवल चंद काग़ज़ों का पुलिंदा भर नहीं हूँ मैं,

किसी के हाथों की लिखी दास्तान भर नहीं हूँ मैं।

समेटे हैं मुझमें किसी ने अपने एहसासों के समंदर,

फ़क़त किसी की कहानी भर नहीं हूँ मैं।

मैं कोई एक डायरी भर नहीं हूँ, मैं किसी की राज़दार हूँ।

मेरे ऊपर उकेरा गया एक-एक अल्फ़ाज़ किसी की ख़ुशी, उदासी, ग़ुस्सा, प्यार, धोखा, वफ़ा, बेवफ़ाई, निराशा, हताशा, जीत, हार, असमंजस— और न जाने कौन-कौन से इंसानी जज़्बातों की इबारत है। और इन जज़्बाती इबारतों को गढ़ते समय इंसान ने अपने आँसू, ख़ून, रूह और ख़ामोशी को स्याही के तौर पर इस्तेमाल किया है।

मुझे आज भी वो दिन याद है जब पहली दफ़ा किसी इंसान ने अपनी क़लम से मेरे जिस्म को छुआ था। लेकिन मुझे उस दिन बिल्कुल भी अंदाज़ा नहीं था कि जिस इंसान ने मेरे जिस्म को छुआ, वो अगले हर

रोज़ अपनी रूह को मेरे हवाले करने वाला था—मुझे अपना राज़दार बनाने वाला था।

अपने दिलों और दिमाग़ में छाए हुए हर तरह के जज़्बाती फ़ितूरों को मुझे सुपुर्द करने वाला था।

ख़ैर, ये सिलसिला शुरू हुआ और इस क़दर शुरू हुआ कि पता ही नहीं चला कि मैं कब धीरे-धीरे उसके लिए एक इंसान का किरदार निभाने लगी।

ऐसा लगने लगा कि शुरुआत में जो इंसान केवल कुछ अल्फ़ाज़ मेरे हवाले करता था, अब वो अपने जज़्बात भी मुझे सौंपने लगा है।

अब मेरे और इस इंसान के बीच होने वाले अल्फ़ाज़ों और जज़्बातों के लेन-देन ने एक गुफ़्तगू की शक्ल अख़्तियार कर ली है—और गुफ़्तगू भी इकतरफ़ा।

और धीरे-धीरे ये गुफ़्तगू इस क़दर परवान चढ़ी कि अब मैं उसकी दोस्त बनती जा रही हूँ।

और सच कहूँ तो, इस इंसानी दोस्ती की सोहबत मुझे भी भाने लगी है।

अब मैं भी उस लम्हे का बड़ी बेसब्री से इंतज़ार करती हूँ, जब वो इंसान बिस्तर पर जाने से पहले मेज़ पर बैठकर, टेबल लैंप की मद्धम रोशनी में, अपनी आँखों पर चश्मा टिकाए, अपनी क़लम को हाथ में थामता है—और अगले ही पल मेरे काग़ज़ी जिस्म पर जज़्बाती स्याही से अपने मन के चित्र मुझ पर रंगता चला जाता है।

आज भी मेरी आँखें आए दिन कभी उस इंसान के काँपते हाथों की, तो कभी उसकी भीगी आँखों की, कभी मुस्कुराते होठों की, तो कभी उसके बेचैन दिमाग़ की, तो कभी घोड़े की रफ़्तार से धड़कते उसके दिल की गवाह बनती रहती हैं।

अब इस इंसान से मेरा रिश्ता आम नहीं रहा है—दिनों-दिन और गहरा होता चला जा रहा है।

कभी अपनी बीवी के साथ होने वाली प्यार से लबरेज़ नोंक-झोंक के कहकहे,

तो कभी बच्चों की तारीफ़ें, जो वो उनके सामने नहीं करता,

कभी अपने माँ-बाप के आख़िरी लम्हों का ज़िक्र,

तो कभी अपने अधूरे ख़्वाबों की फ़ेहरिस्त,

कभी अपने बचपन के घर की कहानियाँ,

तो कभी अपने पहले प्यार के रूमानी क़िस्से,

कभी अपने पसंदीदा गानों के चंद लफ़्ज़,

तो कभी मीर, ग़ालिब, दाग़ के शेर,

कभी अपने दफ़्तर की किस्सागोई,

तो कभी अपने कल की चिंता का डर।

और न जाने कितनी तरह की अनगिनत ऐसी गुफ़्तगू हमारे बीच हो चुकी है इस दरमियान।

हर रोज़ ये सिलसिला बदस्तूर जारी है, और हर रोज़ ये गुफ़्तगू तब तक चलती रहती है जब तक ये इंसान लिखते-लिखते अपना सर मेरे कंधे पर रखकर सो नहीं जाता।

लेकिन लगता है अल्फ़ाज़ों और जज़्बातों के इस इकतरफ़ा लेन-देन का ये सफ़र अब ख़त्म होने को आया है।

इस इंसान की सोहबत अब मेरे लिए केवल एक बीता ख़्वाब बनकर रह जाएगी।

*आज भी मेरी आँखें आए दिन कभी उस इंसान के काँपते हाथों की, तो कभी उसकी भीगी आँखों की, कभी मुस्कुराते होठों की, तो कभी उसके बेचैन दिमाग़ की, तो कभी घोड़े की रफ़्तार से धड़कते उसके दिल की गवाह बनती रहती हैं।*

मेरे पन्नों पर इबारत गढ़ने के इस सिलसिले में मैं इतनी मशगूल हो गई कि पता ही नहीं चला कि कब उस इंसान की क़लम मेरे आख़िरी पन्ने से रूबरू हो गई।

लगता है अब मेरी बाक़ी की ज़िंदगी अलमारी में पहले से रखी दूसरी डायरियों के साथ गुफ़्तगू करके, और मुझसे बाद में आने वाली डायरियों में इस इंसान ने जो इबारतें गढ़ी हैं, उनके क़िस्से सुनकर ही बीतेगी।

लेकिन इसमें गलती तो उस इंसान की भी नहीं है।

वो आज भी मेरे काग़ज़ी जिस्म पर अपने जज़्बातों के चित्र बनाना चाहता है,

लेकिन मेरे जिस्म में अब और जगह ही नहीं बची है।

अगर आज ख़ुदा सामने होता, तो मैं उससे बस यही कहती—

"ए ख़ुदा, मेरे इस काग़ज़ी जिस्म में कुछ और पन्ने जोड़ दो।

आपका ये एहसान मैं ज़िंदगी भर याद रखूँगी।"

ख़ैर, इस इंसान के साथ गुफ़्तगू के इस दौर ने मेरी तारीख़ बदल दी है।

कभी मैं मेज़ पर पड़ी केवल एक ख़ाली डायरी थी—

और आज मैं किसी की राज़दार बन चुकी हूँ।

इस इंसान के अल्फ़ाज़ी जज़्बातों ने मेरे अंदर के स्याह-सफ़ेद ख़ालीपन को न केवल दूर किया,

बल्कि इसकी वजह से मैंने ज़िंदगी के रंगों को महसूस किया है।

मैंने महसूस किया है कि इंसान होना कितना ख़ूबसूरत है।

और इस सब के लिए मैं इस इंसान की हमेशा-हमेशा के लिए शुक्रगुज़ार रहूँगी।

इस इंसान का ये एहसान तो मैं ज़िंदगी में नहीं उतार सकती।

लेकिन अब इंसान के अल्फ़ाज़ी जज़्बातों को तारीख़ बनाकर ताउम्र अपने पास रख सकती हूँ।

और यही मेरा इस इंसान को दिया हुआ इकलौता तोहफ़ा होगा।

# ४ - खुशियाँ बटोर लो

वो कहते हैं ना कि अगर आप लोगों के चेहरे की मुस्कुराहटों के ज़िम्मेदार बनते हैं, तो यक़ीन मानिए आप इस दुनिया के कुछ चुनिंदा बेहतरीन इंसानों में से एक हैं।

और मैं ख़ुद को उन कुछ चुनिंदा बेहतरीन इंसानों की फ़ेहरिस्त में शुमार करती हूँ। यक़ीन मानिए, ये दावा मेरा ग़ुरूर नहीं है बल्कि मेरी ज़िंदगी की बुनावट का नतीजा है। आपको विश्वास नहीं हो रहा? तो चलिए, आपको अपनी ज़िंदगी की बुनावट के थोड़ा क़रीब लेकर चलती हूँ। फिर आपका जो शक है मेरे दावे पर, वो ज़रा कमजोर पड़ जाएगा।

मैं एक कार हूँ। मेरे पहले मालिक शहर के बहुत बड़े सेठ थे। उन्होंने मुझे अपनी धर्मपत्नी को उनकी ५०वीं सालगिरह पर तोहफ़े के तौर पर दिया था। मुझे आज भी याद है — जैसे ही सेठानी ने अपनी कोठी के बगीचे में मुझे खड़ा देखा, तो पहले तो उन्हें लगा कि ये अजनबी गाड़ी किसकी खड़ी है। फिर अचानक से पेड़ों के बीच से सेठ जी अपनी दो बेटियों के साथ निकलकर सामने आए और तीनों लोग तालियाँ बजाते हुए ज़ोर-ज़ोर से "हैप्पी बर्थडे" बोलते हुए सेठानी को मेरे क़रीब लाए। यक़ीन मानिए, हैरत, ख़ुशी और प्यार से भरपूर जो मुस्कान सेठानी के चेहरे पर आई, उसे देखकर तो मुझे लगा कि मेरा इस दुनिया में आना सार्थक हो गया। जब मैं सेठ, सेठानी और उनकी दोनों बेटियों की ख़ुशियों के पलों

की गवाह बन रही थी, मैंने उस पल को अपनी आँखों में हमेशा के लिए बसा लिया।

ख़ैर, ख़ुशियों का वो सिलसिला जो सेठ जी के घर में मेरे आने के बाद शुरू हुआ था, वो बदस्तूर जारी रहा। कहीं घूमने जाना हो, किसी की शादी में जाना हो, या किसी रिश्तेदार के घर — हर पल मैं तैयार खड़ी मिलती और उनकी ख़ुशियों को पंख लगा देती। लेकिन अगर मुझसे पूछा जाए कि मैं सबसे ज़्यादा खुश कब होती थी, तो मेरा जवाब होगा — जब ड्राइवर की जगह ख़ुद सेठ जी मुझे चलाकर सेठानी को मेले में ले जाते थे। थोड़ा सा प्यार, थोड़ी सी शरारत, थोड़ी सी नोंक-झोंक, थोड़ा सा रूठना-मनाना, और ख़ुशियों के कुछ लम्हे — ये सब होता था उस छोटे से सफ़र में।

अभी कुछ ही साल गुज़रे होंगे कि फिर एक दिन वो हुआ जिसकी मैंने कभी कल्पना तक नहीं की थी। हुआ कुछ यूँ कि सेठ जी ने मुझे अपनी फैक्ट्री में काम करने वाले सुपरवाइज़र को कुछ हज़ार रुपये में बेच दिया। वो मंजर आज भी मेरी आँखों में घूम जाता है — जब सेठ जी ने मेरी चाबियाँ सुपरवाइज़र को पकड़ाई थीं। मैं मन ही मन भगवान से कह रही थी कि ये कौन सा न्याय है? जिस परिवार को मैंने खुश होने के इतने बेशुमार पल दिए, उस परिवार ने मुझे एक झटके में ख़ुद से दूर कर दिया।

ख़ैर, मेरी इस नाराज़गी और मेरे दुख की उम्र मेरी उम्मीद से बहुत ही कम साबित हुई। सुपरवाइज़र मुझे ख़ुद ही चलाकर अपने घर ले गया था। जैसे ही मैं उसके दरवाज़े पर पहुँची, तो सुपरवाइज़र की बीवी हाथों में आरती की थाली लिए मेरा इंतज़ार कर रही थी। उसने सबसे पहले रोली से तिलक किया, फिर मेरे ऊपर चावल के कुछ दाने फेंके और उसके बाद मेरी

आरती उतारी। इसके बाद मेरे चारों तरफ़ घूम-घूम कर मुझे प्यार भरी आँखों से देखने लगी। इस सबके कारण सेठ जी के कारण मिला दुख कम होता चला गया। सुपरवाइज़र रोज़ सुबह नहाने से पहले मेरी सफ़ाई करता था, मुझे नहलाता था। अगर सच कहूँ, भले ही मुझे सेठ जी ने पहली बार ख़रीदा था, लेकिन जिस हिफ़ाज़त से सुपरवाइज़र मेरी देखभाल करता था, वो सेठ जी से कई मायनों में ज़्यादा थी। और इसी वजह से मुझे सुपरवाइज़र और उसके परिवार में शामिल होने में ज़्यादा समय नहीं लगा। मुझे आज भी याद है — जब सुपरवाइज़र की पत्नी पेट से थी, और उन्हें अचानक एक दिन तेज़ दर्द हुआ। तब सुपरवाइज़र अपनी बीवी को मुझमें बैठाकर अस्पताल ले गया था। और जब दो दिन बाद सुपरवाइज़र की बीवी अस्पताल से वापस आने लगी, तब वो दो लोग नहीं बल्कि तीन थे। हाँ, सुपरवाइज़र की बीवी ने एक सुंदर सी बिटिया को जन्म दिया था। रास्ते में घर आते समय सुपरवाइज़र और उसकी पत्नी की मुस्कान देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गए थे।

दिन गुज़रते गए। मेरी भी उम्र हो चली थी। अब सुपरवाइज़र भी मेरा पहले की तरह ध्यान नहीं रखता था। मैं महीनों भर खड़ी रहती थी। ऐसा लगता था कि मैं सुपरवाइज़र पर बोझ बन गई हूँ। मुझे ऐसा महसूस होने लगा था कि मैं अपनी ज़िंदगी के आख़िरी दिन गिन रही हूँ। तभी एक दिन मैंने सुपरवाइज़र को मेरी चाबियाँ अपने ड्राइवर भोला को देते हुए देखा। सुपरवाइज़र भोला से कह रहा था कि “इसे तुम ऐसे ही ले जाओ, जब तक चलती है इसे चलाओ, बस मेरे घर की जगह ख़ाली हो जाए।”

मुझे उस वक्त ऐसा लगा जैसे वक़्त का पहिया उल्टा घूमने लगा हो। और मुझे वो दिन याद आ गया जब सेठ जी ने मुझे ख़ुद से अलग किया था।

ख़ैर, इस बार मुझे ज़्यादा दुख नहीं हुआ। मैंने अपनी नियति को स्वीकार कर लिया था। शायद ईश्वर ने मुझे कुछ और लोगों की ख़ुशियों की ज़िम्मेदारी दी थी।

भोला एक मस्तमौला नौजवान था जिसकी शादी नहीं हुई थी। गाड़ी चलाना उसका शौक़ था। काम के बाद भोला जब भी मुझे लेकर अपने दोस्तों के साथ घूमने-फिरने निकलता था, तो उसकी आँखों की चमक मेरे हौसले बढ़ाती थी। भोला जब भी अपनी प्रेमिका से मिलने जाता था, तो मुझे ज़रूर लेकर जाता था। भोला का साथ मुझे मेरी ज़िंदगी के आख़िरी पलों में भी जवानी का एहसास दिलाता था।

*मुझे उस वक्त ऐसा लगा जैसे वक़्त का पहिया उल्टा घूमने लगा हो। और मुझे वो दिन याद आ गया जब सेठ जी ने मुझे ख़ुद से अलग किया था। ख़ैर, इस बार मुझे ज़्यादा दुख नहीं हुआ। मैंने अपनी नियति को स्वीकार कर लिया था।*

आज भी भोला मेरे साथ है, और आज भी मैं उसकी ख़ुशियों की हमसफ़र हूँ।

देखते हैं, खुशियाँ बाँटने का मेरा ये सफ़र जो सेठ जी के यहाँ से शुरू हुआ था, कितनी दूर तलक जाएगा।

और हाँ, आपको अभी भी इस बात पर कोई शक है कि मेरा नाम दुनिया के उन कुछ चुनिंदा बेहतरीन इंसानों की फ़ेहरिस्त में है जो लोगों के चेहरे की मुस्कुराहटों के ज़िम्मेदार बनते हैं?

# ५-वो एक साल

बीते साल की बात है, सर्दियों की उस दुपहरी में,आसमान से गिरती हुई सुनहरी धूप के लुत्फ़ के साथ मुस्कराहटों और कहकहों का दौर चल रहा था।छोटे बड़े, अलग अलग किस्मों के, अलग अलग रंगों के दरख़्तों की मौजूदगी महफ़िल में चार चाँद लगा रही थी। सभी दरख़्तों ने उस ज़ुबानी महफ़िल में अपने अपने फ़न की नुमाइश लगा रखी थी। कविताओं, कहानी, किस्सों, कहकहों, नग़मों, चुटकलों का ये सिलसिला बदस्तूर जारी था। दरख़्तों की मुस्कराहटों की लंबाई भी महफ़िल की परवानगी के साथ बढ़ती जा रही थी। और मैं उस महफ़िल के बारे में इतनी तफ़सील से इसलिए बता पा रहा हूँ क्यूँकि मुझे भी उस महफ़िल का दावतनामा मिला था। लेकिन मैं ख़ुद को इस महफ़िल में शिरकत करने के लिए राजी नहीं कर पा रहा था, कुछ वजहें थी जो मुझे इस महफ़िल में शिरकत करने से रोक रहीं थीं। लेकिन मेरे लाख ना चाहते हुए भी मुझे उस महफ़िल में शिरकत करनी पड़ी । मुझे ऐसा लग रहा था कि मेरी मौजूदगी उस महफ़िल के लायक़ नही थी। ऐसा लग रहा था मानो जैसे उस महफ़िल में मेरी मौजूदगी महफ़िल में मनहूसियत सी फैला रही हो ।और इस मनहूसियत को जानने के लिए मुझे अपनी ज़िंदगी की पिछले साल की बीती तारीख़ों का ज़िक्र करना पड़ेगा ।

आज भी मैं अपने पुराने दिन भूलता नही हूँ। मैं कि इस बगीचे में सबसे दिलख़ुश और खूबसूरत दरख़्तों में सुमार किया जाता था।चट्टान की तरह सीधा खड़ा तना, और उसकी हरे रेशम के माफ़िक़ पत्तों से भरी हुईं टहनियों से बाक़ी के दरख़्त इस कदर जलते थे जैसे कि कोई स्त्री किसी अप्सरा के सौंदर्य से जलती हो।

लेकिन एकदिन अचानक पता नही क्या हुआ, अपनी जिस खूबसूरती पर में इतराता हुआ घूमता था, उसे किसी की नजर लग गई । हुआ कुछ यूँ कि पिछली से पिछली गर्मियों में मेरी ज़िंदगी ने बदतर हालातों से दोस्ती गाँठ ली। और उन बदतर हालातों की दोस्ती का रंग मुझ पर कुछ ऐसा छाया कि चंद महीनों में ही मैं बस एक लकड़ी का ठूठ भर रह गया था । मेरे हरे रेशमी पत्तों ने मेरी टहनियों से बेवफ़ाई कर ली थी। मेरी टहनियाँ पत्तों की इस बेबवफ़ाई को बर्दाश्त नही कर सकीं, वो सूखकर किसी मरे हुए जानवर की हड्डी की तरह हो गईं। धीरे धीरे मेरे अंदर के सारे जज्बात भी मर चुके थे । आने वाले सावन की कोशिशें भी नाकाफ़ी साबित हुई, सावन की बारिश का मलहम भी मेरे घाव भरने में नाकामयाब साबित रहे । और पिछली सर्दियाँ आते आते मैं बस एक चलती फिरती ज़िंदा लाश बन चुका था। और उसी दरम्यान इस महफ़िल का दावतनामा भी मेरे दरवाज़े पर दस्तक दे चुका होता है ।

बहरहाल महफ़िल में हसीं और कहकहों का दौर अब भी बदस्तूर जारी था। लेकिन अचानक एक बांकया हुआ। जिसने मेरे पैरों तले ज़मीन ही ग़ायब कर दी। कविताओं, कहानी, किस्सों, कहकहों, नग़मों, चुटकलों का ये सिलसिला अचानक से एक बदसूरत मोड़ अख्तियार कर लेता है । होता कुछ यूँ की जब रफ्ता रफ्ता महफ़िल में कहकहों की कमी पड़ने

*आने वाले सावन की कोशिशें भी नाकाफ़ी साबित हुई, सावन की बारिश का मलहम भी मेरे घाव भरने में नाकामयाब साबित रहे। और पिछली सर्दियाँ आते आते मैं बस एक चलती फिरती ज़िंदा लाश बन चुका था।*

लगी तब मेरे जिस्मानी और रूहानी हालातों पर टिकी शायरियां उस महफ़िल का मुशायरा बन गयी। और इन शायरियों को दाद देते हुए बाक़ी के दरख़्त मुझ पर फबतियाँ कसने लगे। मेरे ठूठ जैसे बदन का मज़ाक़ महफ़िल की हवाओं में दौड़ने लगा। ख़ैर मैं करता भी तो क्या ? मैंने जैसे तैसे एक झूठी मुस्कुराहट का सहारा लेकर उस महफ़िल को बर्दाश्त किया। और गीली आँखों और भारी मन से उस महफ़िल को अलविदा कहा।

महफ़िल तो बर्खास्त तो हो चुकी थी। लेकिन मेरे अंदर एक जुनून पैदा कर गई। और ख़ुद से बस इतना कहा कि ”मैं इस तरह तो ज़ाया नही हो सकता।” मैंने फ़ौरन ही अपने मन में उम्मीद का एक बीज बोया। और साल भर मैंने ख़ुद पर मेहनत की। बीती गर्मियों में सूरज से आँख से आँख मिलाई, आँधी और तूफानों में सीधा खड़ा रहा। ये सब देख रेशमी पत्तों की नई खेप मुझसे दोस्ती का हाथ बढ़ाने आ गई। बीता सावन भी उस महफ़िल के दौरान मुझसे की गई बदसलूकियाँ भूला नहीं था। उसने भी मेरे रफ्ता रफ्ता ज़िंदा हो रहे जिस्म पर अपने पानी के मरहम से मालिश की। और इन सब का नतीजा ये रहा कि मेरा हुस्न खूबसूरती की इंतहा को पार कर गया।

सावन मेरी मदद कर के जा चुका है, फिर से सर्दियों ने अपनी हकूमत क़ायम कर ली है। इस दफा भी एक और महफ़िल महफ़िल परवान चढ़ी है। और आज साल भर बाद मैं फिर से उसी महफ़िल में शिरकत कर रहा हूँ। मेरे पत्तों पर पर जीत और संतुष्टि के भाव स्पष्ट दिख रहे हैं। मेरा तना आज फिर से चट्टान की तरह खड़ा है। मेरी टहनियाँ और उस पर लगे हुए हरे, रेशमी पत्ते अपनी वफ़ाई का नजराना पेश कर रहे हैं।एक अलहदापन है मुझ में जो बाक़ी दरख़्तों से अव्वल बना रहा है मुझे। कहानी, किस्सों, कहकहों, नग़मों, चुटकलों दौर शुरू हो चुका है। लेकिन मैं आज भी अलग, अकेला और खामोश बैठा हुआ हूँ। क्योंकि यह महफ़िल मेरे अल्फ़ाज़ों का दीदार करने का हक़ साल भर पहले ही खो चुकी है।

# ६-बाप और बेटी

जीवन में कुछ क्षण ऐसे आते हैं जब आपकी आँखें आने वाले कल के दुख और ख़तरे का डर, और बीते कल की सुनहरी यादें—दोनों को एक साथ देखने लगती हैं। और आज मैं एक ऐसे ही पल की गवाह बन रही हूँ।

सुबह हो चुकी है, चारों तरफ़ अजीब सा सन्नाटा छाया हुआ है। पंडित जी चारपाई पर लेटे हुए हैं। उनकी आँखें बंद हैं और मुँह खुला हुआ। आज न जाने कितने अरसे बाद यह हुआ है कि सुबह के ८ बजने को हैं और मैं अभी तक कोने में गुमसुम खड़ी हूँ। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। पंडित जी हमेशा सूरज उगने से पहले ही चारपाई छोड़ दिया करते थे, और चारपाई से उठते ही उनकी सबसे पहली नज़र मुझ पर ही जाती थी। लेकिन आज ऐसा कुछ नहीं हुआ।

काफ़ी देर हो चुकी है, पंडित जी का छोटा बेटा उनके क़रीब आया है, वह उन्हें उठाने की कोशिश कर रहा है, लेकिन पंडित जी को उठाते-उठाते उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे हैं। और फिर धीरे-धीरे जिस सन्नाटे को मैं सुबह से महसूस कर रही थी, वह अब कोलाहल में बदल चुका है। छोटे बेटे ने रोते-रोते परिवार के बाक़ी सदस्यों को भी बुला लिया है। पंडित जी को नीचे एक चटाई पर लिटा कर सफ़ेद चादर ओढ़ा दी गई है।

अब तक मैं समझ चुकी हूँ कि पंडित जी की बंद आँखें हमेशा के लिए बंद हो गई हैं। उनके रिश्तेदार, सगे-संबंधी आसपास उन्हें घेर कर खड़े हैं। उनके बेटे, बेटियाँ, पोते, भाई, बहनें—सब की आँखें नम हैं। चारों तरफ़ रोना-धोना और चीखने-चिल्लाने की आवाज़ें गूंज रही हैं। लेकिन पंडिताइन एक कोने में बैठकर बस पंडित जी को चुपचाप निहारे जा रही हैं। ऐसा लग रहा है कि वह बस पंडित जी के उठने का इंतज़ार कर रही हैं।

मैं भी खड़ी-खड़ी कोने में से सफ़ेद चादर में लिपटे हुए पंडित जी को बस एकटक देखे जा रही हूँ। जो बदहवासी मैंने पंडिताइन की आँखों में देखी थी, उसने मुझे भी अपना शिकार बना लिया है। बस अंतर इतना है कि मेरे लाख चाहने के बावजूद पता नहीं मेरी आँखों से आँसू क्यों नहीं निकल रहे हैं। मैं रोना भी चाह रही हूँ, लेकिन मेरे गले से आवाज़ ही नहीं निकल रही है।

अभी कल की ही बात है, मंगलवार का दिन था। क्या शान से पंडित जी अपने हाथों से मेरी मालिश कर रहे थे। एक बार मेरी मालिश करने के बाद, पहले मुझे देखते, फिर थोड़ा सा और तेल लेकर अपने मुलायम हाथों से मेरी मालिश करते। लेकिन उस दौरान मैंने बिलकुल भी नहीं सोचा था कि यह पंडित जी द्वारा की गई मेरी आख़िरी मालिश होगी।

पंडित जी और मेरा साथ कुछ १४ साल पुराना है। पंडित जी का छोटा बेटा लक्ष्मण, जो कि उनका लाड़ला था, उसने मुझे गाँव में लगने वाले होली के मेले से ख़रीद कर पंडित जी को लाकर दिया था। शुरुआत में तो पंडित जी मुझे शौक-शौक में अपने साथ रखते थे। लंबी-चौड़ी क़द-काठी

और घनी, रौबदार मूँछों वाले पंडित जी जब सफ़ेद कुर्ता और धोती पहनकर, और हाथों में मुझे लेकर बाहर निकलते तो ऐसा लगता जैसे किसी राज्य का राजा अपने हाथों में तलवार लिए अपने राज्य की सैर पर निकला हो।

जब भी कहीं बैठते तो मुझे पास की दीवार पर सटा कर रख दिया करते थे। और जब भी किसी बैठक या चौपाल में शामिल होते तो बार-बार उनकी नज़र बस मेरी तरफ़ ही होती थी। मुझे अपना जिगर का टुकड़ा मानते थे पंडित जी, इसलिए एक पल के लिए आँखों से ओझल नहीं होने देते थे मुझे। इसके पीछे भी एक क़िस्सा है।

एक बार की बात है कि पंडित जी किसी के यहाँ हवन-यज्ञ कराने गए थे। कार्यक्रम का आयोजन एक मंदिर के पास बनाए गए एक बड़े से पंडाल में था। वहाँ मुझे रखने के लिए पंडित जी को कोई दीवार नज़र नहीं आई। पंडित जी से जजमान ने जब उनकी परेशानी का कारण पूछा, तो पंडित जी ने अपनी परेशानी बता दी। जजमान ने पंडित जी से कहा कि इसमें परेशान होने वाली क्या बात है, लाइए अपनी लाठी मुझे दे दीजिए, मैं इसे पंडाल के बाहर बने मंदिर में रखवा देता हूँ। जब आप यहाँ से जाएँ तब मैं लाठी आपको लाकर दे दूँगा। लेकिन पंडित जी को जजमान की बात समझ न आई।

जजमान ने फिर कहा—बिलकुल निश्चिंत रहिए पंडित जी, आपकी लाठी कहीं नहीं जाएगी। काफ़ी न-नुकुर करने के बाद पंडित जी ने मुझे जजमान के हवाले कर दिया।

सारे विधि-विधान समाप्त हो जाने के बाद जब पंडित जी चलने को हुए तो उन्होंने जजमान से मुझे लाने के लिए कहा। लेकिन लाठी (मुझे) लाने गए जजमान जैसे ही मंदिर से वापस आए, उनके तो होश उड़ गए थे। जजमान ने पंडित जी से कहा कि लगता है आपकी लाठी चोरी हो गई है पंडित जी, शायद यह सब मेरी लापरवाही की वजह से हुआ है, मैं आपकी लाठी का हरजाना भरने को तैयार हूँ।

पंडित जी को काफ़ी तेज़ ग़ुस्सा आया—मैंने आपसे पहले ही मना किया था। फिर पंडित जी वहाँ से चुपचाप चले आए। दो दिनों तक पंडित जी ने खाना नहीं खाया, और न ही बाहर निकले।

दो दिन बाद वही जजमान अपने हाथों में मुझे लिए पंडित जी के घर आए। उन्होंने बताया कि लाठी (मुझे) कोई बच्चा मंदिर से उठाकर खेत में ले गया था, और वहीं खेत में ही छोड़ आया था। और सुबह जब जजमान खेत की तरफ़ गए तो मैं वहाँ उन्हें पड़ी मिली।

मुझे पाकर पंडित जी की आँखों में आँसू आ गए थे। इससे पहले मैंने पंडित जी को कभी इस हालत में नहीं देखा था। जजमान के जाने के बाद काफ़ी देर तक पंडित जी मुझे अपनी गोद में रखकर बैठे रहे। पंडित जी को देखकर लग रहा था जैसे कोई बाप अपनी खोई हुई बेटी को वापस पाकर भावुक हो गया हो।

और उसके अगले दिन पंडित जी रामू सुनार के पास गए और वहाँ जाकर मेरे दोनों सिरों को चाँदी से मढ़वा दिया। इसके बाद तो मेरी सुंदरता में चार चाँद लग गए।

पंडित जी और मेरा रिश्ता शायद एक बाप-बेटी की तरह था। जैसे बेटियाँ घर की शान होती हैं, वैसे ही मैं पंडित जी की आन, बान, शान थी। सुबह उठने से लेकर शाम को चारपाई पर जाने तक शायद ही कोई ऐसा क्षण होता था जब मैं पंडित जी के साथ न होती। और सोते समय भी पंडित जी मुझे हमेशा अपने सिर के सामने वाली दीवार पर टिका कर रख दिया करते थे। और रात में जब भी आँख खुलती थी, तब एक निगाह मुझ पर जरूर डाल लेते थे।

*जजमान के जाने के बाद काफ़ी देर तक पंडित जी मुझे अपनी गोद में रखकर बैठे रहे। पंडित जी को देखकर लग रहा था जैसे कोई बाप अपनी खोई हुई बेटी को वापस पाकर भावुक हो गया हो।*

पंडित जी हर मंगलवार को नियम से मेरी मालिश किया करते थे। और हर रक्षाबंधन पर मुझे राखी बाँधना नहीं भूलते थे। विजयदशमी पर तो पूरे विधि-विधान से मेरा तिलक-चंदन करके पूजते थे पंडित जी मुझे।

पिछले कुछ दो-ढाई सालों से पंडित जी को चलने में दिक़्क़त होने लगी थी। मेरे बिना उनसे चला नहीं जाता था। पहले पंडित जी मुझे अपने साथ शान-शौक़त के लिए रखते थे, लेकिन मैं अब उनकी ज़रूरत बन गई थी। लेकिन मैंने भी एक बेटी होने का पूरा फ़र्ज़ निभाया। जिस बाप ने अपनी जवानी में मुझे अपने कंधे पर बैठाकर घुमाया हो, उस बाप का साथ बुढ़ापे में कैसे छोड़ सकती थी?

लेकिन आज वह बाप मुझे हमेशा के लिए छोड़ कर जा रहा है। और मेरी फूटी किस्मत तो देखो कि जिस पिता समान पंडित जी ने मुझे पूरा संसार दिखाया, आज मैं आख़िरी बार उन्हें पास से देखने भी नहीं जा सकती। आज मेरा हृदय रो-रो कर ईश्वर को धिक्कार रहा है कि मुझे निर्जीव क्यों बनाया। अगर मेरा वश चले तो मैं पंडित जी की चिता में जलकर उन्हीं के साथ हमेशा के लिए चली जाऊँ। क्योंकि एक वही तो थे इस घर में जो मुझे अपनी बेटी समझते थे। बाक़ियों के लिए तो बस मैं एक काठ की लाठी मात्र हूँ।

# ७- राम का पन्ना

मेरी कहानी शुरू होती है तब से जब प्रीति की सामान्य विज्ञान विषय की कॉपी पूरी तरह से भर चुकी थी और उसने अपने पापा से एक नई कॉपी लाने के लिए कहा था। अजय बाबू, यानी कि प्रीति के पापा, वैसे तो बड़े भुलक्कड़ हैं—बस घर आने का रास्ता छोड़कर उनके भूलने वाली चीजों की फ़ेहरिस्त बड़ी ही अजीबोगरीब और लंबी है। लेकिन उस दिन अपनी बिटिया रानी के मुँह से निकला फ़रमान उन्हें घर से दफ़्तर को निकलने से लेकर, शाम को दफ़्तर से घर आते समय तक, घड़ी-घड़ी याद आता रहा। रास्ते में पड़ने वाली गणेश बुक शॉप पर पहुँचते ही उन्होंने अपना स्कूटर साइड में लगाया। दुकान पर आते ही उन्होंने हिन्दी की कॉपी निकालने को कहा।

दुकान पर काम करने वाले लड़के ने अजय बाबू के सामने रखे कॉपियों के बंडल की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, "इसमें से उठा लीजिए बाऊजी, सब हिन्दी की हैं।

अजय बाबू लड़के की बात सुनकर बंडल में रखी कॉपियों को उलट-पलट करने लगे। यह देखकर दुकान पर काम करने वाले लड़के ने टोका, "बाऊजी, कोई भी कॉपी उठा लो, इतना उलट-पलट क्या कर रहे हो, सारी कॉपियाँ हिन्दी की ही हैं और एक ही दाम की हैं।"

लेकिन अजय बाबू उस लड़के की बात को अनसुना करके अपने काम में मशगूल रहे। कुछ नहीं तो कम से कम ३५-५० कॉपियों को इधर-उधर करने के बाद उन्हें मैं मिल गई। और मेरे मिलते ही उनकी तलाश समाप्त हो गई। पता नहीं, उनकी तलाश में ऐसा क्या था जो मैं उनकी उस कसौटी पर खरी उतर आई। कवर पर बने चित्र को छोड़कर मैं बाक़ी कॉपियों की तरह ही थी। शायद मेरे ऊपर बने पार्क में खेलते बच्चों के चित्र ने उन्हें उनकी बिटिया रानी की याद दिला दी थी। खैर, दुकान वाले को पैसे देकर अजय बाबू सीधा घर की तरफ़ चल पड़े।

घर पहुँचते ही उन्होंने आवाज़ लगाई, "प्रीति! प्रीति!"

और जैसे ही प्रीति अजय बाबू के पास पहुँची, उन्होंने अपने थैले से मुझे निकाल कर प्रीति को थमा दिया। मुझे पाकर पहले तो प्रीति बहुत खुश हुई, और फिर मुझ पर बना चित्र देखकर तो वह अजय बाबू से लिपट गई। उसके बाद प्रीति मुझे लेकर अपने कमरे की ओर जाने लगी। इतने में प्रीति की मम्मी ने कहा, "कहाँ भागी जा रही है? खाना तो खाती जा।"

प्रीति ने कहा, "मम्मी, मुझे अभी भूख नहीं है, बाद में खा लूँगी," और इतना कहकर अपने कमरे में भाग गई।

कमरे में पहुँचकर सबसे पहले उसने मुझे खोलकर पहले पन्ने पर लिखा—

नाम - कुमारी प्रीति

कक्षा - ३(अ)

विषय - सामान्य विज्ञान

यहाँ एक बात गौर करने वाली है कि प्रीति ने मुझ पर विषय के तौर पर सामान्य विज्ञान लिखा, लेकिन अजय बाबू ने दुकान पर ख़रीदते समय हिन्दी की कॉपी कहा था। यहाँ हिन्दी की कॉपी का मतलब है: दो लाइन वाली कॉपी या ऐसी कॉपी जिसके पन्नों पर लाइनें समान दूरी पर बनी होती हैं और बाएँ हाथ की तरफ एक लंबी लाइन खिंची होती है जिसे हाँसिया कहते हैं।

बहरहाल, अपना नाम और दूसरी जानकारी लिखने के बाद प्रीति कई मिनटों तक मुझ पर बने चित्र को देखकर मुस्कुराती रही। फिर उसने बड़े क़रीने से मुझे अपने बस्ते में रख दिया।

जब मैं प्रीति के बस्ते में थी, तो मैंने देखा कि प्रीति के बस्ते में जो बाकी कॉपियाँ और किताबें थीं, उन पर अख़बार की जिल्द चढ़ी हुई थी। लेकिन प्रीति ने मुझे बिना जिल्द के ही रखा था। शायद प्रीति को मुझ पर बना हुआ चित्र बहुत पसंद आया था, इसलिए उसने मुझे बिना जिल्द के ही रखने का सोचा, क्योंकि जिल्द चढ़ाने से मुझ पर बना चित्र छुप जाता। और यह बात प्रीति को बिलकुल भी मंज़ूर नहीं थी।

बहरहाल, प्रीति अगले दिन मुझे बस्ते में रखकर स्कूल लेकर गई। जिस विषय—यानी सामान्य विज्ञान—में मुझे प्रयोग किया जाना था, उसका पीरियड इंटरवल के बाद था, लेकिन प्रीति ने मुझे पहले ही पीरियड में अपने बस्ते से बाहर निकाल लिया था और बाकी बच्चों को बुला-बुलाकर कह रही थी, "देखो मेरी कॉपी! सुंदर है न?" ख़ुद ही प्रश्न पूछकर उत्तर देने का यह सिलसिला तब तक चला जब तक सामान्य विज्ञान का पीरियड नहीं आ गया।

सामान्य विज्ञान वाले सर ने जब बोर्ड पर लिखना शुरू किया, तो प्रीति ने जिस पन्ने पर अपना नाम लिखा था, उससे अगला एक और पन्ना छोड़कर मुझ पर लिखना शुरू किया। प्रीति की यह हरकत मुझे समझ न आई। लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है, जब प्रीति लिखना शुरू करने वाली थी, तब पीछे बैठी मुस्कान ने उसे टोका था, "अरे प्रीति! राम का पन्ना छोड़कर लिख।"

और यह सुनकर प्रीति ने वह पन्ना छोड़कर अगले पन्ने से लिखना शुरू कर दिया। राम का पन्ना! ये क्या बला है? मैं समझ नहीं पाई थी कि ये राम का पन्ना क्या होता है। लेकिन बाद में जाना कि कुछ बच्चे अपनी कॉपी का पहला पन्ना भगवान राम के नाम पर छोड़ते हैं। कहते हैं इससे पढ़ाई में आशीर्वाद मिलता है, नंबर अच्छे आते हैं।

धीरे-धीरे मेरा और प्रीति का सफ़र शुरू हुआ। सामान्य विज्ञान का पीरियड सप्ताह में केवल तीन दिन होता था, लेकिन प्रीति रोज़ाना मुझे स्कूल लेकर जाती थी। और यह देखकर बाकी कॉपियाँ मुझसे बहुत जलती थीं। और उनकी जलन का यह एकमात्र कारण नहीं था।

मुझ पर जिल्द न चढ़े होने की वजह से मुझ पर बना चित्र प्रीति की आँखों के सामने हमेशा घूमता रहता था, और इसी वजह से प्रीति का बाकी कॉपियों की तुलना में मुझसे ज़्यादा लगाव हो गया था।

वो कहते हैं न—सुंदर चीजों को छुपाकर रखना चाहिए, वरना जलने वाले लोगों की नज़र लग जाती है। यही हुआ मेरे और प्रीति के बीच की नज़दीकी और लगाव के साथ।

एक दिन सामान्य विज्ञान वाले सर ने प्रीति की कॉपी—यानी मुझे—देख लिया। उन्होंने प्रीति को खड़ा करके बहुत डाँटा। बोले, "तुम्हारी कॉपी पर जिल्द क्यों नहीं है? बाकी किसी भी बच्चे की कॉपी दिख रही है बिना जिल्द के?"

प्रीति सर की डाँट सुनकर रुआंसी हो उठी। यह देखकर सर को उस पर तरस आ गया।

"प्रीति, रोने वाली बात नहीं है। अगर तुम कॉपी पर जिल्द नहीं चढ़ाओगी तो कॉपी गंदी हो जाएगी और बहुत जल्द फट भी जाएगी। इसलिए कल तुम सामान्य विज्ञान की कॉपी पर जिल्द चढ़ाकर आना।"

यह सुनकर प्रीति ने सिर हाँ में हिला दिया और वापस अपनी जगह पर बैठ गई।

और जब यह सब हो रहा था, तब प्रीति को देखकर मुझे बड़ा दुख हुआ। बेचारी को मेरी वजह से पूरी कक्षा के सामने शर्मिंदा होना पड़ा था।

घर आकर प्रीति ने सबसे पहले मुझ पर एक पुराने अख़बार को जिल्द की तरह चढ़ा दिया। उस समय मैं प्रीति की आँखों की उदासी को महसूस कर पा रही थी। मुझे भी बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था, क्योंकि उस अख़बार की जिल्द से मुझ पर बना चित्र छिप गया था। और उसी चित्र की वजह से ही तो प्रीति मुझे बाकी कॉपियों से ज़्यादा चाहती थी। जिल्द चढ़ाने के बाद प्रीति सोने चली गई और यह सब होता देख सबसे ज़्यादा ख़ुशी बस्ते में रखी बाकी कॉपियों को हो रही थी। सभी के चेहरे पर एक कुटिल मुस्कान थी।

लेकिन बस्ते की उन कॉपियों की ख़ुशी ज़्यादा देर तक न टिक सकी। क्योंकि जब प्रीति सोकर उठी, तो सबसे पहले उसने मेरे पास आकर मेरे ऊपर चढ़ी जिल्द को हल्के से हटाया, मुझ पर बना चित्र देखा, थोड़ा मुस्कराई और फिर वापस जिल्द चढ़ा दी।

प्रीति ने इस होशियारी के साथ मुझ पर जिल्द चढ़ाई थी कि जब भी उसका मन हो, वह मुझ पर बना चित्र देख सके। वास्तव में प्रीति ने जिल्द तो चढ़ाई थी लेकिन उसे पंच नहीं किया था।

*मुझ पर जिल्द न चढ़े होने की वजह से मुझ पर बना चित्र प्रीति की आँखों के सामने हमेशा घूमता रहता था, और इसी वजह से प्रीति का बाकी कॉपियों की तुलना में मुझसे ज़्यादा लगाव हो गया था।*

बहरहाल, मेरा और प्रीति का सफ़र जारी रहा। मैं जितना आगे से भर रही थी, उतना ही पीछे से भी। आगे तो मैं सामान्य विज्ञान के प्रश्न-उत्तर से भरी हुई थी, लेकिन पीछे के पन्ने प्रीति की मासूमियत और उसके बचपन की गवाही दिया करते थे—पेन से बने हुए अलग-अलग कार्टून, जानवर, अपने दोस्तों और मम्मी-पापा की शक्लें, दोस्तों के नाम, हाथ से बनाई गई डिज़ाइनें, क्लास में पढ़ाते सर का कार्टून, पेड़-पौधे और न जाने क्या-क्या।

यह सब देखकर पहले तो मुझे खुशी होती थी, लेकिन अब एक उदासी मुझको घेर लेती है। इसका कारण यह था कि समय के साथ मैं भी भरने वाली थी। मेरे और प्रीति का साथ बस कुछ पन्नों का बचा था।

और अचानक एक दिन वह मनहूस पल आ ही गया, जब कक्षा में लिखते-लिखते मुझमें एक भी पन्ना खाली नहीं बचा था। और उसी दिन घर जाकर प्रीति ने मुझे अलमारी में सँभाल कर रख दिया।

अलमारी में बंद मैं भगवान को कोस रही थी—क्या मुझमें कुछ और पन्ने नहीं जोड़े जा सकते थे, जिससे मैं प्रीति के साथ कुछ और दिन बिता लेती?

लेकिन भगवान ने मेरी जल्दी ही सुन ली। एक दिन प्रीति ने अलमारी खोली, मुझे उठाया और मुझ पर चढ़ी जिल्द हटा दी, और क़रीब १५ मिनट तक अपनी नाज़ुक उँगलियों को मेरे ऊपर बने चित्र पर फिराती रही, और फिर से मुझे अलमारी में रख दिया। और तब से यह सिलसिला बदस्तूर जारी है—वह हर ३-४ दिन में अलमारी खोलकर मुझे मिल लिया करती है।

# ८- दीवार में एक कोना

ईंट के टुकड़े काट कर तैयार कर लिये गये हैं, तसले में सीमेंट और बालू का मसाला तैयार है। मिस्त्री पास में खड़े घर के मालिक के चेहरे की तरफ़ देखकर उससे आँखों ही आँखों में आख़िरी बार उसकी उसकी रजामंदी ले रहा है। और घर के मालिक के हावभाव देखकर लग रहा है की वह फैसला कर चुका है कि दीवार में बने सालों पुराने ताख़ को हमेशा हमेशा के लिए एक सपाट दीवार में बदल दिया दिया जाय।

और ताख़ किसी भी समय उसका अस्तित्व समाप्त हो सकने वाले उस क्षण में बस वह यह सोच रहा है कि अगर ईश्वर उसे अभी बोलने की शक्ति दे तो वह घर के मालिक से कुछ बातें करना चाहेगा, कुछ याद दिलाना चाहेगा। वो कहेगा

हे मालिक

वैसे तो आपकी याददाश्त काबिले तारीफ़ है। आपको सब कुछ याद रहता है। लेकिन कुछ है जो शायद आज आप भूल रहे हैं। और मेरे अगले कुछ शब्द आपकी जिंदगी के एक उस भूले बिसरे रिश्ते की कहानियाँ बतायेंगे जिस रिश्ते को आप जाने अनजाने हमेशा हमेशा के लिए खोने जा रहे हैं। ये रिश्ता है आपका और मेरा !

मुझे आज भी अच्छी तरह से वे दिन याद हैं, जब आप अपने पैरों पर खड़ा होना सीख रहे थे। लकड़ी का एक झुनझुना आपका सबसे पसंदीदा खिलौना हुआ करता था। अक्सर आपके पिता जी चुपचाप उस लकड़ी के झुनझुने को मेरे हवाले कर दिया करते थे, और वह ऐसा जानबूझ कर करते थे, ताकि आप अपने पसंदीदा खिलौने के लालच में ख़ुद से खड़े होना सीखें। और आप गिरते पड़ते, अपने नन्हें नन्हें हाथों से दीवार का सहारा लेकर मुझ में रखें अपने झुनझुने को उठा लिया करते थे।

और फिर आप थोड़े से बड़े हुए और स्कूल जाने लगे। पूरे दिन शरारत करने के बाद जब आपको याद आता कि अभी आपका स्कूल का होमवर्क अधूरा पड़ा है, तब आप एक दिये की रोशनी में अपना स्कूल का काम पूरा करते थे। जिस दिये के तले आपके जीवन की अनगिनत शामें गुजरीं, जिस दिये ने आपके जीवन के धुँधलके को अपनी ज्योति से हमेशा दूर किया, उस दिये को हमेशा मैंने अपने हृदय से लगा कर रखा और वो भी उस क़ीमत पर कि उस दिये ने प्रत्येक दिन मेरे मुँह पर कालिख पोती।

आपके पता है जब आपके के घर के तालों की चाबियाँ जब अपने अपने तालों से नाराज़ होकर बिछुड़ती थी तब मेरे पास आकर अपना सुख दुख सुनाती थी, मुझसे बातें करती थी और मेरे ही गोद में सर रखकर सो जाया करती थीं।

और जब आप कमाने लगे, तब आप अपनी जेब से निकले सिक्के मेरे हवाले कर दिया करते थे। और मैं उन सिक्कों तब तक महफ़ूज़ रखा करता था जब तक किसी बच्चे की फ़रमाइश पर या उनको खुश करने के लिए आपको सिक्कों की दुबारा ज़रूरत न पड़ती हो।

*और ताख़ किसी भी समय उसका अस्तित्व समाप्त हो सकने वाले उस क्षण में बस वह यह सोच रहा है कि अगर ईश्वर उसे अभी बोलने की शक्ति दे तो वह घर के मालिक से कुछ बातें करना चाहेगा, कुछ याद दिलाना चाहेगा।*

आपके घर की हर वो क़ीमती चीज जिसका वजन आपकी जेबों ने नही उठाया, जिसको आपके घर के किसी कोने में जगह न मिली उनको अपने कलेजे से लगा के रखा।

और तो और जिस ईश्वर की आप पूजा करते हो न जाने कितने वर्षों तक उस ईश्वर ने मुझे अपने घर के रूप में चुना।

लेकिन मालिक इस सबके वावजूद भी आप मुझे हमेशा - हमेशा के लिए क्यों मुझे ख़ुद से दूर कर रहें हैं। मैंने आपसे कभी कुछ नही माँगा। लेकिन मैं आज आपसे कुछ माँग रहा हूँ, मैंने हमेशा आपकी प्यारी चीजों को अपने दिल में जगह दी है, बस अगर मेरी बातों से लगता है कि मैं भी आपके और आपके परिवार के जीवन का छोटा सा लेकिन महत्वपूर्ण हिस्सा रहा हूँ और मैं भी आपके प्यार का हक़दार हूँ, तो मुझे भी अपने घर की इस दीवार में एक कोना दे दीजिए, इस मिस्त्री को रोक लीजिए और इस ताख को सपाट दीवार बनने से बचाइए।

# ९-उदास बालक

कभी कभी दिल में ख़्याल आता है कि कितने ही ख़ुशनसीब होंगे वो दरवाज़े जिन पर रोज़ ताला नही लगता। वो दरवाज़े जिनसे गुजरने वाली सूरज की किरणें हर रोज़ उस घर के कोने कोने को रोशन करते हैं। वो दरवाज़े जिनसे गुजरे हुए हवा के झोंके उस घर को ठंडक पहुँचाते हैं । वो दरवाज़े जिनकी दुपहरियाँ उन दरवाज़ों की चौखट पर बैठी हुई घर की बहू, बेटियों और उनकी कभी न रुकने वाली गुफ़्तगू को सुनते हुए बीतती है। वो दरवाज़े जिनसे शायद ही कभी कोई ज़रूरतमंद, साधु या संन्यासी ख़ाली हाथ वापस लौटता हो। वो दरवाज़े जिन पर पड़ी हुई हर दस्तक उस घर में रहने वाले बाशिंदों के चेहरों पर रौनक़ें ला सकती हों। वो दरवाज़े जिनके बाहर की सड़क पर होने वाली चहल पहल कभी भी उस घर में अकेलेपन को रुकने नही देती हो।

लेकिन ये ख़ुशनसीबी शायद मेरे हिस्से में नही लिखी गई है । बीते कुछ पिछले १७ सालों से यह एक रिवाज सा बन गया है कि चाहे दिन हो या रात, मैं हमेशा ही उस ग़ुमसुम बालक के होठों की तरह बंद रहता हूँ जिसका सबसे पसंदीदा खिलौना जैसे किसी ने छीन लिया हो या जिसके बचपन को शायद किसी की नज़र लग गई हो।

और इसका कारण है इस घर में रहने वाले इकलौते शख़्स की हालात और मजबूरियाँ। वे हालात और मजबूरियाँ जिनकी वजह से उसे दफ़्तर जाते समय मेरे दोनों फाटकों को बंद कर के ताला लगाने की रस्म, जो

पिछले १७ सालों से बिना किसी रोकटोक के चली आ रही, उसे निभानी पड़ती है।

मुझे उस शख़्स से कोई शिकायत नही है। क्योंकि कई दफ़ा मैंने उसकी आँखों में उसे ख़ुद के गुनहगार होने का दर्द देखा है। उसे भी दफ़्तर जाते समय मुझ पर ताला लगाना यूँ चुभता है जैसे उसने किसी अबोध बालक के अधरों को सिल कर उसकी मुस्कान को जैसे छीन सा लिया है उसने। उसकी आँखों में इस बात का वजन दिखता है हमेशा। कई दफ़ा उसकी जेबों नें मुझ पर लगाए गए ताले की चाबियों का वजन झेलने से मना कर दिया है। लेकिन कमबख़्त ये हालात और मजबूरियाँ !

ख़ैर जब वो शख़्स जब मुझ पर ताला लगा के चला जाता है तब उसके बाद पूरे दिन जो मैं झेलता हूँ उसका बयान कुछ इस तरह है। आसपास के घरों के खुले दरवाज़े मुझे शरारती बच्चों की तरह चिढ़ाते है। और मुझ पर फबतियाँ कसते हैं, कहते हैं इसकी ज़िंदगी में तो बंद रहना ही लिखा है । और मैं सारा दिन एक नाराज, उदास और गुमशुम बच्चे की तरह इंतज़ार करता हूँ उस शख़्स के वापस आने का।

और शाम को जब वो शख़्स वापस आता है और जब वो उस ताले की चाबियों से मुझे खोल रहा होता है तब शुरू होता है मेरी शिकायतों का दौर । मैं हमेशा उससे एक बच्चे की तरह रुँधे हुए गले से बाक़ी दूसरे बच्चों ( दूसरे दरवाज़ों ) की तरफ़ इशारे कर के शिकायत कर रहा होता हूँ, कि मेरी क्या गलती है ? क्या मैं इन की तरह मुस्कुरा नहीं सकता ? क्या कभी में दिन भर खेल नहीं सकता ? क्या कभी मेरे फाटक बाक़ी दरवाज़ों की तरह बिना ताले के खुले नही रह सकते ? लेकिन उस शख़्स

*पता है ! मैं जब भी कभी अपने गाँव वाले घर जाता हूँ तो देखता हूँ कि घर के दरवाज़े कभी बाहर से बंद नहीं होते, किसी को भी घर से बाहर जाना हो तो वो बेफ़िक्र जा सकता है*

के पास मेरी इन शिकायतों का कोई जवाब नहीं होता। उसके पास होती है उसकी ख़ामोशी, उसकी उदासी और उसका अकेलापन।

लेकिन ऐसा नही कि शिकायतें केवल मुझे ही होती हैं, उदासी केवल मुझे होती है, नाराज़गी केवल मुझे होती है। उस शख़्स को भी इन सब से गुजरना पड़ता है। वो भी चाहता है कि मैं भी बाक़ी दरवाज़ों की तरह हँसता,खेलता और मुस्कराता हुआ रहूँ। और मैं ये बात इसलिए कह रहा हूँ क्यूँकि मैंने उस शख़्स को एक बार अपने एक दोस्त से ये कहते हुए सुना था।

“यार पता है जब भी मुझे दफ़्तर या छोटे मोटे काम के लिए घर से बाहर जाना होता है तब मुझे हमेशा दरवाज़े बाहर से बंद करने पड़ते हैं, ताला डालना पड़ता है। अगर घर में कोई और हो तो ये सब न करना पड़े। पता है ! मैं जब भी कभी अपने गाँव वाले घर जाता हूँ तो देखता हूँ कि घर के दरवाज़े कभी बाहर से बंद नहीं होते, किसी को भी घर से बाहर जाना हो तो वो बेफ़िक्र जा सकता है। न ही ताला लगाने का झंझट और न ही चाबी सम्भाल के रखने की उलझन। और ना ही वापस लौटते समय किसी की आँखों में उदासी या अकेलापन दिखता है। खैर एक दिन जरूर आयेगा जब दफ़्तर जाते समय मुझे भी घर के दरवाजों को बाहर से बंद नहीं करना पड़ेगा और जब मैं दफ़्तर से लौट कर आऊंगा, तब ये दरवाज़े और इन पर खड़ा कोई अपना अज़ीज़ हंसते,मुस्कुराते हुए बाहें फैलाकर मेरा स्वागत करेंगे”

# १० - तोहफ़ा, तोहफ़े को

वैसे तो रमेश कानपुर का रहने वाला था, लेकिन नौकरी के सिलसिले में उसे मुंबई शिफ्ट होना पड़ा। कुछ दो साल हो गए थे रमेश को मुंबई में नौकरी करते-करते। इस दौरान कई लोगों से उसकी जान-पहचान हो गई थी और कई तो उसके अच्छे दोस्त बन गए थे। इनमें से कुछ लोग रमेश के ऑफिस के थे जहाँ वह नौकरी करता था, कुछ लोग उसकी सोसाइटी के थे जहाँ रमेश रहा करता था, और कुछ लोगों से मुलाकात रमेश की एक लाइब्रेरी में हुई थी जहाँ रमेश अकसर जाया करता था।

एक बार रमेश ने अपने जन्मदिन पर एक छोटी-सी पार्टी रखी। रमेश ने उस पार्टी में अपने ऑफिस वाले, सोसाइटी वाले और लाइब्रेरी वाले दोस्तों को भी बुलाया था। जो भी उस पार्टी में आया था, वह रमेश के लिए कुछ न कुछ गिफ्ट लेकर आया था। रमेश सबका स्वागत करते हुए उन गिफ्ट्स को एक कोने में रखता जा रहा था।

पार्टी ख़त्म हुई, सभी चले गए। सबसे आख़िर में रमेश और रमेश का बहुत अच्छा साथी दिलीप रह गए थे। दोनों मिलकर रमेश को मिलने वाले गिफ्ट्स खोल-खोलकर देखने लगे। किसी ने किताब दी थी, किसी ने घड़ी, तो किसी ने सुंदर-सी पेंटिंग। किसी एक व्यक्ति ने एक बहुत सुंदर-सा फूलों का गुलदस्ता दिया था। लेकिन रमेश और दिलीप दोनों ने उस

गुलदस्ते पर कोई ख़ास ध्यान नहीं दिया, और एक कोने में लगभग फेंक ही दिया था।

जब सारे गिफ्ट्स देखे जा चुके थे, तब दिलीप भी रमेश से विदा लेकर चला गया। दिलीप के जाने के बाद, थका होने की वजह से रमेश भी तुरंत सो गया।

अगले दिन रमेश के ऑफिस की छुट्टी थी, उसे कहीं जाने की जल्दी नहीं थी। उठने के बाद उसने सबसे पहले अपने बिखरे हुए कमरे को सँभाला। जहाँ-तहाँ बिखरे गिफ्ट्स को उठाकर एक अलमारी में रख दिया। गुलदस्ते को पहले तो वह अपने घर की बालकनी पर रखने जा रहा था, फिर कुछ सोचकर उसने उन फूलों को एक मेज़ पर रख दिया।

उसके बाद रमेश चाय बनाने लगा। चाय बनाने के बाद रमेश ने एक कप में चाय ली और कमरे से बालकनी की तरफ़ जाने वाले दरवाज़े पर रखी कुर्सी पर बैठ गया। उस कुर्सी से बाहर का नज़ारा तो दिख ही रहा था, लेकिन वहाँ से कमरे के अंदर भी देखा जा सकता था।

ये तो रहा फ़्लैशबैक! असल कहानी शुरू होती है यहाँ से। दरअसल ये कहानी रमेश की नहीं, मेरी है — रमेश तो बस मेरी कहानी में किरदार भर है। और मैं हूँ टेबल पर रखा वो फूलों का गुलदस्ता, जिसे रमेश को उसके जन्मदिन वाले दिन किसी ने उपहार में दिया था।

पता है, आज सुबह जब रमेश अपना कमरा साफ़ कर रहा था और मुझे बाहर बालकनी पर फेंकने वाला ही था, तभी उसके दिमाग़ में अचानक एक ख़्याल आया और उसने मुझे तुरंत मेज़ पर रख दिया।

लेकिन ऐसा क्यों? जब रमेश चाय की चुस्कियाँ लेते हुए कल रात के जश्न के बारे में सोच ही रहा था, तब अचानक उसकी नज़र मुझ पर पड़ी। काफ़ी देर मुझे घूरने के बाद, रमेश ने मुझसे बोला—

"तुम जानते हो, ये मेरे जीवन में पहली बार हुआ है कि जब मुझे किसी ने फूल गिफ्ट किए हैं। न जाने कितने चाहने वाले हैं मेरे, न जाने कितने दोस्त रहे हैं मेरे अब तक, न जाने कितनी माशूक़ाएँ मेरे प्यार में पागल रही हैं। लेकिन अभी तक किसी ने मुझे इस लायक़ नहीं समझा था। मैंने भी अनेक लोगों को फूल गिफ्ट किए हैं, लेकिन ये पहला मौक़ा है कि मैं भी आज किसी के गिफ्ट किए गए फूलों में उसका प्यार, सम्मान महसूस कर पा रहा हूँ।"

रमेश की ये बात सुनकर मेरी जान में जान आई, वरना कल रात गिफ्ट्स को देखते समय जिस तरह रमेश और दिलीप ने मुझे एक तरफ़ फेंक दिया और आज सुबह जब रमेश मुझे उठाकर बालकनी में रखने जा रहा था, उससे तो ये लगा कि मेरा यहाँ आना ख़ामख़्वाह ही था।

लेकिन जिस अंदाज़ में उसने कुछ अजनबी और बेजान फूलों — यानी मेरे — सामने अपना दर्द बयां किया, जिस तरह उसने अपने दिल के राज मेरे हवाले किए, मैं उसका क़ायल हो गया था। मुझे उसके साथ हमदर्दी हो रही थी।

ख़ैर, चाय ख़त्म करने के बाद रमेश अपनी कुर्सी से उठा और मेरी तरफ़ आगे बढ़ा। मैंने गौर से देखा, जब वह मेरे पास आ रहा था, तब उसके होंठों पर एक अजीब-सी मुस्कुराहट थी और उसकी आँखों में आँसुओं की कुछ बूँदें।

वो कहते हैं न, जब किसी लम्हे का इस्तक़बाल आँसू और मुस्कान की जोड़ी करे, वो लम्हे शायद ज़िंदगी के सबसे हसीन लम्हों की फ़ेहरिस्त में शुमार हो जाते हैं। और ऐसे ही कुछ लम्हों का गवाह मैं और रमेश बन रहे थे।

यक़ीन मानिए, अगर ख़ुदा ने मुझे दो हाथ दिए होते, तो मैं उस वक्त रमेश को अपनी बाँहों में क़ैद कर गले लगा लेता, और अपने उन हाथों से रमेश के आँसुओं को पोंछता।

उसके बाद दो दिन तक रमेश ने मुझे अपने कमरे में उसी मेज़ पर रहने दिया। जब भी वो मेरे पास से गुजरता, तो उसकी आँखों में सुकून का एहसास दिखता।

*वो कहते हैं न, जब किसी लम्हे का इस्तक़बाल आँसू और मुस्कान की जोड़ी करे, वो लम्हे शायद ज़िंदगी के सबसे हसीन लम्हों की फ़ेहरिस्त में शुमार हो जाते हैं। और ऐसे ही कुछ लम्हों का गवाह मैं और रमेश बन रहे थे।*

तीसरे दिन जब मैं मुरझाने लगा, तब मुझे लगने लगा कि रमेश और मेरे बीच की इस खूबसूरत कहानी का अंत पास ही है।

लेकिन मैं ये भूल गया था कि कहानी चाहे किसी की हो, उसका अंत पहले ही लिखा जा चुका होता है, और उसे लिखने वाला और कोई नहीं, ख़ुद ख़ुदा ही होता है।

रमेश एक बार फिर से मुझे उठाकर अपनी बालकनी में ले गया। और इस दफ़ा उसने मेरे अंदर से एक-एक फूल निकालकर अलग कर दिया। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था। मेरी कहानी का ये अंत बिल्कुल मेरी कल्पनाओं के परे था।

लेकिन कहानी अभी ख़त्म कहाँ होने वाली थी। जैसे ही मेरे अंदर के सारे फूल अलग-अलग हो गए, रमेश ने पास में रखे एक गमले की थोड़ी-सी मिट्टी को खोदा और मेरे एक फूल की डंडी को हल्का-सा छीलकर उस मिट्टी में दबा दिया। और इस तरह एक-एक करके रमेश ने मेरे सारे फूलों को गमले में रोप दिया। उसके बाद थोड़ा-सा पानी डाल दिया। और ये सब देखकर मेरी आँखें हैरत से फटी जा रही थीं।

लेकिन रमेश ने जो जादू किया था, उसका असर मुझ पर दिखाई देने लगा था। मेरे सारे फूल जो मुरझा रहे थे और जो बस कुछ घंटों के मेहमान थे, उनमें अचानक एक ताजगी-सी आ गई थी। सारे फूल अपने बल खड़े हुए मुस्कुरा रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे कि मेरा दुबारा जन्म हुआ है।

और अब तक मैं समझ चुका था कि रमेश ने मेरी और अपनी इस छोटी-सी कहानी को एक ऐसा खूबसूरत मोड़ दिया था जिससे ये कहानी हमेशा के लिए अमर हो गई थी।

जो फूल रमेश ने रोपे थे, वो अब फूलों से लबरेज़ पौधों की झूमती खेप बन चुकी हैं। वो खेप जिसका हर फूल किसी के बेशकीमती जज़्बातों की दास्तान है।

आज भी रमेश जब बालकनी में खड़े होकर मेरी तरफ़ देखता है, तो उसके चेहरे पर वही मुस्कान दौड़ जाती है, जब उसके जीवन के पहले फूल — यानी मैं — उससे मिला था।

वास्तव में उस दिन रमेश ने केवल मेरे फूलों को रोपा भर नहीं था, बल्कि हमारी कहानी को अमर करके मुझे एक तोहफ़ा दिया था।

वास्तव में शायद ये पहला वाक़या होगा, जब किसी तोहफ़े को किसी ने तोहफ़ा दिया हो।

*और अब तक मैं समझ चुका था कि रमेश ने मेरी और अपनी इस छोटी-सी कहानी को एक ऐसा खूबसूरत मोड़ दिया था जिससे ये कहानी हमेशा के लिए अमर हो गई थी।*

और माफ़ करना साथियों, ज़िंदगी में कुछ कहानियाँ शुरू तो होती हैं, लेकिन उनका कोई अंत नहीं होता। और मेरी भी कहानी उन कुछ चुनिंदा कहानियों में से एक है।

# ११- बारह जज़्बात

मैं जनवरी हूँ, साल का आग़ाज़। कुछ लोग तो ख़ूब धूमधाम से मेरा स्वागत करते हैं, लेकिन ज़्यादातर लोगों के लिए होता साल का एक आम दिन। कंपकंपाती ठंड की गवाह देती स्याह काली रातें, धूप और धुँध की लुकाछिपी में गुजरते दिन, और अलाव की तपिश में कटती शाम की सोहबतें। ऐसे ३१ दिनों से सजी-सँवरी रहती हूँ मैं।

यूँ तो कुछ ३१ दिन मुक़र्रर किए गए हैं मेरे हवाले, लेकिन साल के आग़ाज़ की खुमारी में पता नहीं चलता कि कब १ से ३१ आ जाते हैं। और तो और, लोहड़ी की आग से निकलती लपटें मेरा हाथ थाम कर इस सर्द मौसम से मुझे साल के सबसे खूबसूरत और ख़ुशनुमा दिनों की ओर ले जाने को बेताब रहती हैं। और ये बेताबी ख़त्म होती है मेरे और फ़रवरी के मिलन से।

खूबसूरत और अव्वल दर्जे की चीज़ों को देने में कुदरत भी कंजूसी करती है। और कुदरत के इस क़ानून से मैं, यानी कि फ़रवरी, भी न बच पाई हूँ। जितने खूबसूरत, ख़ुशनुमा और ख़ुशमिज़ाज दिनों से नवाज़ा गया है मुझे, उतने ही कम दिन मुक़र्रर किए गए हैं मेरे नाम। बसंत की आबोहवा में पता नहीं ऐसा क्या नशा है कि २८ दिन और २८ रातें भी बहुत कम लगती हैं मुझको। कभी शायद खुदा के सामने इस बात की शिकायत करके फूट-

फूट कर रोई होऊँगी, इसलिए शायद तरस खाकर हर ४ साल बाद १ दिन का इज़ाफ़ी तोहफ़ा मिला करता है मुझे।

सूरज धुँध से लुकाछिपी का खेल जीतकर सोने के समान चमककर चारों ओर बसंती रंग की फ़िज़ा बिखेर रहा होता है, तो वहीं हल्की-हल्की सर्द हवाएँ अभी भी शिशिर ऋतु की यादें ज़ेहन में ताज़ा करती रहती हैं।

फ़रवरी के खूबसूरत २८ दिनों की भरपाई तो मैं नहीं कर सकती लेकिन कुछ हद तक मौसम के बदलाव को थाम सकती हूँ। ग्रीष्म के ताप की दस्तक महसूस करने के बावजूद भी मौसम में थोड़ी सी नमी और हवाओं में थोड़ा सर्दपन बरकरार रखती हूँ मैं। इस वजह से होली में भीगे लोग जब भीनी-भीनी ठंड की ठिठुरन महसूस करते हैं तब वे सूरज की किरणों की शाल ओढ़कर राहत महसूस करते हैं।

मुझको, यानी मार्च के नाम किए गए ३१ में से कुछ दिनों में रज़ाई और पंखे के बीच एक शरारत चलती रहती है और इन दोनों की इस शरारत का ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ता है इंसान को। ख़ैर, रज़ाई इस शरारत में ज़्यादा दिनों तक पंखे का साथ नहीं दे पाती है और अप्रैल आते-आते पंखा अकेला रह जाता है।

मेरे, यानी अप्रैल के आते-आते, मौसम हवाओं से नमी चुराने लगता है। तेज़, सूखी हवाएँ बेताब होती हैं पूरी धरती को पतझड़ के दौरान पेड़ों से गिरे पत्तों की चादर ओढ़ाने में। सूरज भी अपनी ज़ोर-आज़माइश में लगा होता है। हवाएँ बेतहाशा दिन-प्रतिदिन आवारा और गर्म होती जाती हैं। हाँ, रातें अभी भी कभी-कभी भीनी-भीनी ठिठुरन का एहसास करा जाती

हैं। और मुझको मुक़र्रर ३० दिनों में सूरज की ये ज़ोर-आज़माइश और हवाओं की आवारगी दिन-ब-दिन बढ़ती जाती हैं।

और सूरज की इस ज़ोर-आज़माइश और इन शुष्क हवाओं की आवारगी इस क़दर बढ़ती है कि इनकी वजह से मुझसे लोग नफ़रत-सी करने लगते हैं। मौसम एक साज़िश के तहत सूरज की तपिश और हवाओं को मिलाकर एक ऐसी शह-लू को मेरे पीछे लगा देता है जिसका क़हर मुझे, यानी मई को, झेलना पड़ता है, जिसके सामने जहन्नुम की आग भी ठंडी मालूम होती है। दिन तो दिन, रातें भी उस साज़िश से अनछुई नहीं रह पाती हैं। इंसान, पेड़, पौधे, पक्षी, जानवर — सब के सब अपने-अपने ख़ुदा से मेरी शिकायत करते हैं।

मुझे मुक़र्रर ३१ दिन इंसानों को फूटी आँख नहीं सुहाते हैं। बस, आम के पेड़ पर लगे बौर जब इन आवारा हवाओं की वजह से नीचे गिरते हैं, तो उनकी मिठास इंसानों के मेरे ख़िलाफ़ ग़ुस्से को कुछ कम करता जान पड़ता है।

*कभी शायद खुदा के सामने इस बात की शिकायत करके फूट-फूट कर रोई होऊँगी, इसलिए शायद तरस खाकर हर ४ साल बाद १ दिन का इज़ाफ़ी तोहफ़ा मिला करता है मुझे।*

मौसम जो साज़िश मई के ख़िलाफ़ करता है, बहुत हद तक उसकी चपेट में मैं, यानी जून, भी आ जाता हूँ। भट्टी की आग से नहाई हुई हवाएँ जब इंसानी जिस्म को छू कर निकल रही होती हैं, तब मैं मन ही मन अपने

नसीब को कोस रहा होता हूँ। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि क्या मेरा नसीब भी फ़रवरी की तरह खूबसूरत, ख़ुशनुमा और ख़ुशमिज़ाज नहीं हो सकता था। ख़ैर, इस दरमियान मेरी आँखें आसमान की ओर टकटकी लगाए केवल मानसून का इंतज़ार करती रहती हैं — कब बादल अपनी गोद में भरकर पानी लाएँ और मेरे आँचल को ठंडा करें। एक वही है जो मेरे ख़िलाफ़ लगी इस नफ़रती आग को ठंडा करने का दिलासा हमेशा दिया करता है।

ख़ैर, जून को ये ख़ुशनसीबी बहुत ही कम नसीब होती है कि मानसून उस पर मेहरबान हो जाए। ऐसा लगता है कि बादलों को मुझसे, यानी जुलाई से, बाक़ी और महीनों से ज़्यादा प्यार है, इसलिए जिस इंसानी नफ़रत का सामना मई और जून को करना पड़ता है, मानसून की आने की वजह से ये नफ़रत प्यार की तरफ़ मुड़ती हुई दिखाई देती है।

क्या इंसान, क्या जानवर, क्या पक्षी — पेड़-पौधे तक की आँखों में मेरे लिए सिर्फ़ प्यार ही प्यार दिखता है। वो तो नाश हो इस कलमुंही उमस का, जिसकी वजह से कभी-कभी मैं भी उस इंसानी नफ़रत का गवाह बन जाती हूँ जो मई और जून ने झेली होती है। चारों तरफ़ ऐसा लगता है जैसे किसी चित्रकार ने पूरी धरती को हरे रंग से रंग दिया हो। नदी, तालाब, नाले उफान मार-मार कर मेरा इस्तक़बाल करते हैं। साल में शायद फ़रवरी के बाद मैं ही हूँ जिसका इंतज़ार इतनी बेसब्री से किया जाता है और जिसके आने पर चारों तरफ़ होता है तो बस एक ख़ुशनुमा एहसास।

अगर सच कहूँ तो जुलाई ने जो इज़्ज़त और प्यार कमाया होता है, उसका बहुत सारा हिस्सा मुझ तक भी आता है। और ये दिन-ब-दिन बढ़ता ही जाता है। माहौल में त्योहारों का शोर गूंजने लगता है — कभी तीज पर

महिलाओं के शृंगार का उत्साह, तो कभी शिवालयों में ‘हर हर महादेव’ की गूंज, कभी भाई के हाथों पर बँधा हुआ रक्षा-सूत्र, तो कभी ‘हाथी घोड़ा पालकी जय कन्हैया लाल की’ का उद्घोष। ये सभी चीज़ें चिल्ला-चिल्ला कर मेरे, यानी अगस्त के आ जाने के एहसास की गवाही दे रही होती हैं।

चारों तरफ़ दूर-दूर तक फैली हरियाली, खेतों में भरा पानी मुझ पर मौसम की रहनुमाई का असर साफ़-साफ़ दिखा रही होती है। रात के वक़्त मौसम में नमी के साथ-साथ फ़रवरी वाली ठंडक का एहसास भी होता दिखता है। ऐसा लगता है कि ये सफ़र जहाँ से शुरू किया था वहाँ पहुँचने में अब ज़्यादा वक़्त नहीं लगने वाला है।

*साल में शायद फ़रवरी के बाद मैं ही हूँ जिसका इंतज़ार इतनी बेसब्री से किया जाता है और जिसके आने पर चारों तरफ़ होता है तो बस एक ख़ुशनुमा एहसास*

अगस्त की उमस के ख़त्म होते-होते मेरे, यानी सितंबर के दिन आ जाते हैं। मौसम में नमी तो होती है पर गर्मी बहुत कम हो चुकी होती है। रात में जब-तब ठंडी हवा के झोंके आने वाले सफ़र का एहसास दिला जाते हैं। इंसानों का ज़्यादातर समय आने वाले अक्तूबर के इंतज़ार में बीतता है। और ऐसा हो भी क्यों न — अगस्त के मौसम में त्योहारों का जो शोर शुरू होता है, उसकी गूंज अक्तूबर तक जाती है।

लेकिन ये इंसानी फ़ितरत मुझे बिलकुल नागवार गुजरती है। बहरहाल, इस दरम्यान मौसम मुझ पर अपनी मेहरबानी बनाए रखता है। पेड़ और पौधों से उनके पत्ते जुदा हो रहे होते हैं। खेतों में फसल कट चुकी होती है। इस दफ़ा धरती को हरे रंग से रंगने वाले चित्रकार की स्याही मटमैले रंग की हो चुकी होती है।

और जैसे ही आसमान देवी के भजनों से गूंजने लगता है तो समझ लीजिए कि मैं, यानी अक्तूबर, आ चुका हूँ। मौसम में नमी बिलकुल ग़ायब हो चुकी होती है। सूरज की ज़ोर-आज़माइश दिन-ब-दिन कमज़ोर होती जाती है। गुलाबी सर्दी का एहसास फ़िज़ाओं में होने लगता है।

यहाँ आपको मैं अपनी एक मासूमियत का नज़राना पेश करूँगा जो बेवक़ूफ़ी की हदों को छूते हुए निकलता है — पहले मुझे ऐसा लगता था कि शायद मेरे आने की ख़ुशी में इंसान अपने घर-द्वार की सफ़ाई और रंग-रोगन में जुट जाता है, दिए जलाकर मेरा स्वागत करता है।

मैं मन ही मन बड़ा ख़ुश होता था कि ये इंसान मुझसे तो फ़रवरी और जुलाई से ज़्यादा मोहब्बत करते हैं। लेकिन बाद में मुझे किसी ने बताया — "पगले! ये सब तेरे लिये नहीं बल्कि इंसान अपने आने वाले त्योहार दीपावली के मौक़े पर करते हैं।" और ये सुनकर कई रातों तक मुझे नींद नहीं आई।

ख़ैर, नासमझ अक्तूबर की हरकतों से तो आप रूबरू हो ही चुके हो। जिस त्योहार के बारे में सुनकर अक्तूबर कई रातों को सो नहीं पाया था, वह त्योहार कभी तो अक्तूबर को सुपुर्द कर दिया जाता या कभी-कभी मेरी, यानी नवंबर की तारीख़ों को दीपावली की ज़िम्मेदारी दी जाती थी। मौसम

*दिन में सूरज की तपिश शाल का काम करती है तो रातों को रज़ाई को इत्तला दे दी जाती है कि वे अपनी पनाहगाह से बाहर आ सकती हैं।*

पूरी तरह से सर्द हो चुका होता है। सुबह-सुबह घास पर पानी की बूँदें इस बात की पुख़्ता गवाही दे रही होती हैं कि मौसम का सफ़र बहुत जल्दी पूरा होने को है। दिन में सूरज की तपिश शाल का काम करती है तो रातों को रज़ाई को इत्तला दे दी जाती है कि वे अपनी पनाहगाह से बाहर आ सकती हैं।

और इस तरह आख़िरकार फिर से सर्द-स्याह काली रातों और धूप-धुँध की लुकाछिपी की दस्तक लिए मैं, यानी दिसंबर, हाज़िर होता हूँ। मौसम पूरी तरह से शीतमय हो जाता है। ज़्यादातर इंसान न तो मुझसे नफ़रत करते हैं न ही मोहब्बत। लेकिन ये बुज़ुर्ग इंसान पता नहीं क्यों मुझे देखकर अपनी आँख-भौंहें चढ़ाए रखते हैं, बुरा-भला कहते रहते हैं।

ख़ैर, दिन बीतते जाते हैं और पता नहीं कब अलाव की लपटें फिर से इंसानों और पशु-पक्षियों की आरामगाह बन जाती हैं। मेरे आख़िरी दिन आते-आते कुछ-कुछ मैं जनवरी की तरह दिखने लगता हूँ। और फिर आता है जश्न का सिलसिला — जश्न नए साल के आने का, जश्न फिर से जनवरी के आने का, जश्न फिर से ये सारी कहानी दोहराए जाने का।

# १२- अंतिम पत्र

संदूक को राजेश और कबाड़ी के बीच हो रही बहस के शब्द साफ़-साफ़ सुनाई पड़ रहे थे। राजेश मुँहमाँगे दाम से नीचे आने को तैयार नहीं हो रहा था। इसी बीच कबाड़ी वाला बोला, "बाऊजी, बोहनी का टाइम है, 90 रुपये से एक आना भी ज़्यादा नहीं दूँगा। अगर संदूक देना है तो दो, वरना मैं आगे चलूँ," कबाड़ी ने लगभग झुंझलाते हुए कहा।

राजेश संदूक की तरफ़ देखते हुए बोला, "चलो ठीक है, ले जाओ इस कबाड़े को। वैसे भी किसी काम का नहीं है, घर में जगह ही घेर रहा है।"

राजेश और कबाड़ी के बीच हो रही इस सौदेबाज़ी ने संदूक का कलेजा चीर कर रख दिया। उसकी आँखें आँसुओं से नहा चुकी थीं। भरी हुई आँखों से वह मन ही मन सोच रहा था—

"आज बहुरानी होती तो ये सौदा कभी नहीं होने देती। अभी ढंग से महीना भी नहीं बीता बहुरानी को स्वर्ग सिधारे, और ये लोग मुझे इस घर से बाहर फेंक रहे हैं। उस घर से, जिस घर में मैं तब से हूँ जब ये लोग पैदा भी नहीं हुए थे। 90 रुपये! केवल 90 रुपये क़ीमत लगाई इन लोगों ने मेरी वफ़ादारी की।"

संदूक आँखों में हैरानी लिए ख़ुद से ही बड़बड़ा रहा था।

दरअसल, संदूक राजेश की माँ को 'बहुरानी' कहता था। यह वही संदूक था जो राजेश की माँ अपनी शादी में अपने मायके से लेकर आयी थी। अभी कुछ ही दिन पहले राजेश की माँ का देहांत हो गया था और राजेश को अब लगने लगा था कि उनकी माँ के इस संदूक की अब इस घर में कोई ज़रूरत नहीं है। इसलिए उसने संदूक को कबाड़ी को बेचने का फ़ैसला किया था।

लेकिन ऐसा नहीं है कि राजेश ने यह पहली बार किया था। लगभग चार साल पहले की बात है जब राजेश की शादी होने वाली थी और घर में मरम्मत का काम चल रहा था। घर पुराना और जगह कम थी, इसलिए मरम्मत के नाम पर उस छोटे से घर में एक और कमरा बनाने की कोशिश हो रही थी। और घर में ज़्यादा जगह बनाने के लिए घर में मौजूद सभी गैरज़रूरी सामान को हटाने की कवायद भी साथ में चल रही थी।

उसी बीच राजेश ने रिक्शा बुलाकर दो मज़दूरों की मदद से उस संदूक को रिक्शे में चढ़ाने की कोशिश की।

इतने में राजेश की माँ आ पहुँचीं। राजेश पर लगभग चिल्लाते हुए बोलीं, "कहाँ ले जा रहा है इसे?"

राजेश — "माँ, इसे कबाड़े की दुकान पर छोड़ने जा रहा हूँ।"

माँ — "क्यों?" (खीजकर)

राजेश — "माँ, घर में जगह कम है और ये बहुत जगह घेर रहा है। और वैसे भी ये संदूक किसी काम का नहीं, बस पड़े-पड़े जंग खा रहा है। इसलिए मैं इसे कबाड़े में देने जा रहा हूँ।"

माँ — "ऐसा है, तेरी बीवी जो सामान अपने मायके से लेकर आएगी, वो सामान कबाड़ी को दे आना। इस संदूक को वहीं पड़ा रहने दे जहाँ पड़ा था। और ज़्यादा घर में जगह की कमी लग रही है तो तुम लोग रहने के लिए नया ठिकाना ढूँढ लो।"

काफ़ी नोकझोंक और हुज्जतों के बाद यह निश्चित हुआ कि संदूक रहेगा तो घर में ही, लेकिन उसे छत पर बने कमरे में रख दिया जाएगा, जहाँ कोई रहता नहीं है।

और समय की चाल देखो कि चार साल पहले जो अनहोनी होते-होते रह गई, वो आज अपने अंजाम तक पहुँचने जा रही है। और आज बहुरानी भी नहीं हैं इस अनहोनी को रोकने के लिए।

ख़ैर, अब संदूक बड़बड़ाते-बड़बड़ाते चुप हो गया है और आज जब उसे इस घर से विदाई साफ़-साफ़ दिखाई दे रही है, तब संदूक इस विदाई से पहले अपनी यादों के सफ़र को एक पत्र के रूप में लिख रहा है:

प्रिय राजेश,

जो चार साल पहले होने वाला था, वो आज हो रहा है। मैं इसमें तुम्हें बिल्कुल भी दोषी नहीं मानता हूँ। मैं समझ सकता हूँ कि जो नाता मेरा बहुरानी के साथ था, तुम उसे नहीं महसूस कर सकते हो। और इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं है। बहुरानी के जाने के बाद मैंने कभी तुम लोगों से कुछ नहीं माँगा, सिवाय तुम्हारे घर में एक कोने के। लेकिन शायद आज वो हक़ भी मैंने खो दिया है।

मुझे आज भी याद है जब बहुरानी की विदाई हो रही थी, तब मैं उनकी पालकी के पीछे वाली बैलगाड़ी में बैठा था। बहुरानी की अलग-अलग रंग की सुंदर साड़ियाँ, उनके शृंगार का सामान, कुछ चादरें और कंबल—सब कुछ मेरे अंदर रख दिया गया था। उस समय बैलगाड़ी में बैठे-बैठे यह एहसास हो रहा था कि बहुरानी की ससुराल में मुझे ही उनकी माँ की तरह देखभाल करनी होगी। जिस तरह बहुरानी के मायके में उनकी माँ उनके कपड़े, साड़ियों की देखभाल करती थीं, अब वह काम मेरे जिम्मे आ गया था।

बहरहाल, मैंने भी इस ज़िम्मेदारी को बखूबी निभाया। सालों-साल बहुरानी की ज़रूरत की चीज़ों को बड़े प्यार और दुलार के साथ सँभाल कर रखा। बहुरानी को किसी भी चीज़ की ज़रूरत पड़ती, तो तुरंत मेरे पास दौड़ी चली आती थीं। साल दर साल यह सिलसिला चलता रहा। मेरे होते हुए बहुरानी को कभी उनके मायके की याद नहीं आने दी।

फिर राजेश, तुम्हारा जन्म हुआ। और मुझे बहुत ख़ुशी हुई। अब बहुरानी के साथ-साथ तुम्हारे सामान को भी सहेज कर रखने लगी। जब बहुरानी तुम्हें गोद में लेकर दुलार करती थीं, तो सच मानो राजेश, मुझे उतनी ही ख़ुशी होती थी जितनी तुम्हारी नानी को होती होगी। जब तुम बड़े हुए और छुप्पन-छुपाई खेलते थे, तो तुम्हारी छुपने की पसंदीदा जगह मैं ही होती थी। और तुम्हें पता है, कई सालों तक तुम मेरे ऊपर बिस्तर लगाकर सोए हो।

जब मेरी उम्र बढ़ी, तब बहुरानी ने मुझे अपने कपड़ों की बजाय घर के ज़रूरी सामान जैसे पुराने बर्तन, ऊनी कपड़ों को सँभालने में लगा दिया।

इन सालों में मैंने न जाने कितनी शादियाँ, ख़ुशियों के पल देखे, और ऐसे किसी भी पल में बहुरानी ने मुझे प्यार की कमी महसूस नहीं होने दी।

बहुरानी के माता-पिता की मृत्यु के बाद जब भी कभी बहुरानी दुखी होतीं, तो मेरे पास आकर मेरे ऊपर सिर रखकर सो जाती थीं—बिलकुल वैसे ही जैसे बचपन में बहुरानी रोते-रोते अपनी माँ के कंधों पर सिर रखकर सो जाती थीं। बहुरानी अपने आख़िरी दिनों में बस मुझे ही देखती रहती थीं और कभी-कभी तो उनकी आँखों से आँसू भी आ जाते थे। शायद उन्हें अंदाज़ा हो गया था कि जो चार साल पहले होते-होते रह गया था, वो उनकी मृत्यु के बाद होकर ही रहेगा।

और बहुरानी का अंदाज़ा बिल्कुल सही था। आज वही हो रहा है।

राजेश, मुझे इस घर से बाहर निकाले जाने का ग़म नहीं है। ग़म है तो बस बहुरानी की आख़िरी इच्छा पूरी न होने का।

सच में राजेश, तुम्हारी माँ का देहांत होने से पहले कई दिनों तक रात में बस एक ही बात मेरे कानों में फुसफुसाती रहती थीं कि—“मेरे जाने के बाद, मेरे राजेश का भी उसी तरह ख़्याल

> *बहुरानी अपने आख़िरी दिनों में बस मुझे ही देखती रहती थीं और कभी-कभी तो उनकी आँखों से आँसू भी आ जाते थे। शायद उन्हें अंदाज़ा हो गया था कि जो चार साल पहले होते-होते रह गया था, वो उनकी मृत्यु के बाद होकर ही रहेगा।*

रखना, जैसे मायके से ससुराल में आने के बाद तुमने मेरा रखा था।"

राजेश, अपना और बहू का ख़्याल रखना।

बहुत बहुत प्यार,

तुम्हारी माँ का संदूक।

और इतने में कबाड़ी वाले ने दो लड़कों को संदूक को बाहर ले जाने का इशारा किया।

# १३-काग़ज़ी मोहब्बत

कहावतों में तो लोगों की असलियत छुपाने के काम आता हूँ। लेकिन असल ज़िंदगी में मेरा किरदार कहावती किरदार से आगे बढ़ कर है। अंदर लोग क्या कर रहे हैं, किस से मिल रहे हैं, कब मिल रहे हैं इन सब सवालों को दुनिया के सामने ऐसी पहेली बना कर रख देता हूँ मैं, जिसका बाहरी दुनिया के पास कोई जवाब नही होता । और बाहर की दुनिया क्या रंग बदल रही है, कब कौन सी साज़िश रच रही है इसका इल्म तक नही होने देता अंदर वालों को । घंटे व घंटे, दिन व दिन, बदलते मौसमी समीकरणों के मुताबिक़ कभी सूरज की किरणों को अपने जिस्म पर गिरने देना और कभी उनसे मुँह मोड़ कर उनका जहाँ मन हो वहाँ गिरने देना। कभी बस यूँ ही किसी के बनाये गये राजमहल की सुंदरता में चार चाँद लगाना। कभी किसी नाटक के मंच पर उस नाटक की पटकथा के अनुसार घड़ी घड़ी बदल रहे किरदारों को लाना, ले जाना। मैं गवाह हूँ हर उस कहानी का जो दुनिया से छुपाई जाती है।

शब्दों के इतने सुंदर और विशाल चित्र के माध्यम से जो अपने कामों का परिचय दिया है, उससे तो अभी तक आप मेरा नाम जान गये होंगे। अगर नही समझ में आया तो अपनी अक्ल पर पड़े पर्दे को हटाइये।

जी हाँ मैं वही हूँ आपका पर्दा। ना जाने कितने सालों से यूँ ही बिना धूल और धूप की परवाह किए बिना लाखों अड़चनों के वावजूद एक ही जगह खड़े होकर तुम्हारे अच्छे, बुरे कारनामों को दुनिया की नज़रों से बचा रहा हूँ। वही पर्दा जब तुम भरी दुपहरी में थके हुए आते हो तब इस नामुराद सूरज की तपिश से तुमको बचाता हूँ।

लेकिन एक बात बताऊँ ये सब मैं इसलिए करता हूँ क्योंकि मुझे तुमसे मोहब्बत है। और मैं ये भी जानता हूँ तुम भी मुझसे उतनी ही मोहब्बत करते हो। तभी तो हर सुबह शाम खाना खाने के बाद मेरे जिस्म पर अपने लबों से मोहब्बत के निशाँ छोड़ देते हो। और मैंने अभी तक अपने जिस्म पर उतरे इन निशाँ ए मोहब्बत को मिटने नही दिया है।

लेकिन आज तुमने मेरा दिल दुखाया है। हमारी इस दास्तान ए मोहब्बत में जिसके अहम किरदार बस केवल हम दो थे, उस दास्तान में एक नामुराद की गुस्ताखी मुझे रास नही आ रही है। वो नामुराद और कोई

*और मैं ये भी जानता हूँ तुम भी मुझसे उतनी ही मोहब्बत करते हो। तभी तो हर सुबह शाम खाना खाने के बाद मेरे जिस्म पर अपने लबों से मोहब्बत के निशाँ छोड़ देते हो।*

नही बल्कि ये कागज के रूमाल हैं जो अभी कुछ रोज़ से ही इस खाने की मेज़ पर मुझे दिखाई दिये हैं।

जब से कमबख़्त ये कागज के रूमाल इस घर में आये हैं तब से तुम मुझे नजरअंदाज करने लगे हो। ना जाने कितने दिनों से खाना खाने के बाद

अपने लबों को मेरे क़रीब नहीं लाए हो। अपने लबों से मोहब्बत के निशान मेरे जिस्म पर नही छोड़े हैं। बोलो ऐसा क्यों हो रहा है। और झूठ मत बोलना! मेरी आँखों से कुछ भी छिपा नही है। मैंने अपनी आँखों से देखा है कि पिछले कुछ रोज़ से तुम जो खाना खाने के बाद अपने लबों से निकले हुए मेरे हक़ के निशाने ए मोहब्बत इन काग़ज़ी रूमालों के जिस्म के हवाले कर रहे हो, मुझे सब पता है।

कहीं बदल तो नहीं रहे हो तुम, कहीं ये काग़ज़ी रूमाल मुझे तुमसे दूर करने की साज़िश तो नही कर रहे। लेकिन ऐसा हो उससे पहले मैं तुम्हें याद दिला दूँ, कि मैं तुम्हारे इश्क़ में ना जाने कितने सालों से यूँ ही एक जगह खड़े होकर तुम्हें निहारता रहता हूँ, तुमसे बेपनाह मोहब्बत करता हूँ। और मेरी ये मोहब्बत इतनी कमजोर नही है कि जो इन चंद काग़ज़ी टुकड़ों की साज़िश इस पर खरोंच भी डाल सकें।

खैर! मैं एक एक दिन का हिसाब किताब रख रहा हूँ। देखता हूँ कि इन काग़ज़ी आशकियों का दौर कितना लंबा चलेगा। मैं भी उस सुबह का इंतज़ार बेसब्री से कर रहा हूँ जब तुम मेरे जिस्म पर अपने लबों से फिर से निशान ए मोहब्बत छोड़ोगे।

# १४-दो महबूब

मैं हूँ चंडीगढ़, नाम तो सुना ही होगा। आज मैं आपको अपना दास्तान-ए-दर्द सुनाने आया हूँ। मैं वो आशिक़ हूँ, जिस पर उसकी दो महबूबाएँ हरदम अपना दावा ठोका करती हैं — एक का नाम पंजाब और दूजी का हरियाणा।

यूँ तो कहने के लिए ये दोनों मेरी महबूबाएँ हैं, लेकिन असल में मुझे हमेशा लगता है कि इन दोनों की मोहब्बत मेरे लिए केवल जिस्मानी है, रूहानी नहीं। मेरे ऐसा कहने के पीछे दलीलों की लंबी फ़ेहरिस्त है।

*दोनों ही माशूक़ाएँ मुझ पर इस क़दर दावा पेश करती हैं, जैसे दोनों ने चंद पैसे मिलाकर मुझे बाज़ार से ख़रीदा हो और अब उसी भाव में मुझे हिस्सों में बाँटना चाहती हों।*

मेरा मानना है कि जब एक शख़्स किसी दूसरे शख़्स की रूह से मोहब्बत करता है, उसके इश्क़ में डूबा होता है — तब उसकी मोहब्बत, उसका इश्क़, अपने महबूब को हर क़िस्म की बंदिशों से आज़ाद करता है। न कोई दावा, न कोई फ़रमाइश, न कोई चाहत — बस होती है तो बेइंतहा मोहब्बत। वो अपने महबूब के रंग में रंगना चाहता है, उसमें खोना चाहता है — न कि अपने रंगों को अपने महबूब पर थोपने की या उसे किसी भी तरह से बदलने की जुर्रत करना चाहता है।

और मेरी ये दोनों माशूक़ाएँ मेरे इन दलीलों में से किसी एक से भी राब्ता नहीं रखतीं। दोनों ही माशूक़ाएँ मुझ पर इस क़दर दावा पेश करती हैं, जैसे दोनों ने चंद पैसे मिलाकर मुझे बाज़ार से ख़रीदा हो और अब उसी भाव में मुझे हिस्सों में बाँटना चाहती हों। फिर अपने-अपने हिस्से को अपने मुताबिक ढालना चाहती हों।

हाँ, यह सही है कि मेरी जिस्मानी ख़ूबसूरती को बड़े अरमानों से खुदा ने अपने हाथों से तराशा है। माना कि मेरी सड़कें माथे की सिंदूर रेखा की तरह सीधी और समांतर हैं, जिनके दोनों तरफ़ हरे-भरे, लेकिन सीधे दरख़्तों की कतारें हैं। जन्नत के दालानों की मानिंद बाग़-बग़ीचे क़रीने से सजाए गए हैं। माना कि मकई के दानों की तरह सजे हुए यहाँ के रिहायशी इलाक़े और बाज़ार खुदा की कारीगरी का बेहतरीन नमूना हैं। माना कि खुदा ने इबादत करके क़ुदरत से मेरे लिए सबसे हसीन और बेहतरीन नज़ारे मुझे नवाज़े हैं।

इन सबके बावजूद मेरी रूह एक आम शहर की तरह है। एक ऐसा आम शहर, जिसकी अपनी शिनाख्त है, अपनी तारीख़ें हैं, अपनी स़क़ाफ़त है। जो हर क़िस्म की बंदिशों से आज़ाद है — खुद में मुकम्मल। जिसे किसी और रंग में रंगने की ख्वाहिश नहीं है। जिसकी एक ही ख्वाहिश है — जब कोई इससे जुड़े, तो केवल इसकी रूह से मोहब्बत करे। जो केवल चंडीगढ़ से मोहब्बत करे।

और शायद मेरी दोनों माशूक़ाओं को कभी मेरे इस दर्द के मर्म का एहसास हो।

# १५- सूनी माँग

खेत-खलिहानों में, सुदूर जंगलों में, नदी के किनारों पर, पहाड़ी ढलानों पर अक्सर मैं मिल जाया करती हूँ। हरी घास, खरपतवार और झाड़ियों के बीच थोड़ी सी ज़मीन हथिया कर न जाने कितनी सदियों से अपनी मोहब्बतों से मिलने और बिछड़ने का इंतज़ार करती रहती हूँ मैं।

मेरे ऊपर चलने वाला हर राहगीर चाहे वह इंसान हो या जानवर, स्त्री हो या पुरुष, गरीब हो या अमीर, देव हो या दानव, राजा हो या रंक, चोर हो या कोतवाल—मेरे लिए वह बस मेरी मोहब्बत है। और मोहब्बत भी एकतरफ़ा, जो कभी मुकम्मल भी नहीं होती। क्योंकि ये राहगीर अपने क़दमों से मेरे जिस्म को गुलज़ार तो कर रहे होते हैं, लेकिन इनकी आँखों में होता है इनके अपने अपनों से मिलने का इंतज़ार और अपनी मंज़िल पर पहुँचने की बेसब्री। और जब इतना सब हो रहा होता है तो किसे पड़ी है मेरी मोहब्बत की। और तो और, अक्सर मेरी इस एकतरफ़ा मोहब्बत की उम्र बस कुछ चंद मीलों का सफ़र हुआ करती है। इतना सब होने के बाद भी मेरी वफ़ा में रत्ती भर की खोट नहीं निकाल सकते आप। एक बार राहगीर के क़दम मेरे जिस्म पर पड़ गए तो उन क़दमों का उनकी मंज़िल से राब्ता कराना ही मेरी मोहब्बत का नज़राना होता है। इस छोटी सी उम्र की मोहब्बत के दरम्यान भी मैं इस बात का पूरा ख़्याल रखती हूँ कि मेरे

राहगीर के क़दमों में किसी भी तरह का काँटा, कंकड़ या कोई ज़हरीला प्राणी न आए।

ख़ैर, आशिक़ाना बातें बहुत हुईं! अब तक तो आप मुझे पहचान गए होंगे? अगर नहीं पहचाने तो मैं आपको बता दूँ—मैं पगडंडी हूँ और कुछ लोग मुझे लीक कहकर भी बुलाते हैं।

भटक रहे मुसाफ़िरों, राहगीरों, ख़ानाबदोशों, जीव-जानवरों को उनकी मंज़िल के नज़दीक तक ले जाना न केवल मेरा पेशा भर बल्कि मेरा शौक़ भी है। जैसे इंसान चाहे कितना भी परेशान हो, दुविधा में हो, अनिश्चितताओं के बादलों ने घेर रखा हो, अंधकार मुँह बाए सामने खड़ा हो, कोई रास्ता न नज़र आ रहा हो—फिर भी उसे अपने जीवन यात्रा में एक राह मिल ही जाती है जो उसे उसके गंतव्य तक पहुँचाती है। उसी तरह से, चाहे कितना भी बियाबान जंगल हो, चाहे कोई रास्ता न दिख रहा हो, चाहे कितनी ही पेचीदगियों भरा पहाड़ हो या नदी का किनारा, चाहे कितना भी अनिश्चित और अंजाना सफ़र हो—किसी न किसी मोड़ पर मैं मिल ही जाती हूँ।

मेरा जन्म कैसे हुआ, मैं कैसे अस्तित्व में आई—इसका मुझे कोई अंदाज़ा नहीं है, लेकिन हो सकता है कि मेरे आसपास मौजूद पेड़, खेत, जंगल, नदी के किनारे, और पहाड़ी ढलानें जानते हों कि मेरा जन्म कब और कैसे हुआ, क्योंकि मेरे होश सँभालने से पहले से ही ये लोग मेरा परिवार बनकर मेरी हिफ़ाज़त करते आए हैं। लेकिन मुझे मेरे जन्म से ज़्यादा दिलचस्पी इस बात को जानने में है कि वह पहला क़दम किस शख़्स का था जिसके क़दमों के निशान ने मुझे इस संसार में पहचान दिलाई थी।

यूँ तो मैं ख़ुद कोई सफ़र कर नहीं सकती लेकिन अनजान मुसाफ़िरों का हमसफ़र बनकर ही मैं अपने ज़िंदगी के सफ़र पर रहती हूँ। मैं हमसफ़र तो हर उस शख़्स की हूँ जिसके क़दमों के निशान मेरे जिस्म पर पड़ते हैं, लेकिन कुछ मुसाफ़िर ऐसे भी होते हैं जिनकी मैं राज़दार भी बन जाती हूँ।

हमसफ़र से राज़दार बनने के इन क़िस्सों की भी अपनी ख़ूबसूरती है।

न जाने मेरी आँखों और कानों ने क्या-क्या ही नहीं देखा, सुना।

*हूँ। मैं हमसफ़र तो हर उस शख़्स की हूँ जिसके क़दमों के निशान मेरे जिस्म पर पड़ते हैं, लेकिन कुछ मुसाफ़िर ऐसे भी होते हैं जिनकी मैं राज़दार भी बन जाती हूँ।*

कभी भटकते हुए शिकारी की आँखों में उसका शिकारीपन, उसकी निर्दयता, उसके हाथ में शस्त्र होने का अहंकार, शिकार पाने और खोने की आशा और निराशा, जंगली जानवरों के हमले और बियाबान जंगल में खोने का डर।

कभी गुज़रते हुए किसानों के रोज़मर्रा की ख़ुशियों और दुश्वारियों के क़िस्से—उनकी आँखों में बादलों को देखकर आने वाली चमक, तो कभी खेत में खड़ी फसलों को देखकर उनके चेहरे का संतोष, तो कभी फसलों के दाम को लेकर मन ही मन चलने वाली ऊहापोह।

तो कभी स्कूल से वापस आते हुए, पीठ पर बस्ता टाँगे, थके हुए बच्चों की आपसी गुफ़्तगू।

तो कभी-कभी दो अनजान लोगों का अपनी-अपनी साइकिलों को लेकर पैदल चलते हुए अपने-अपने परिवार के किसी लड़के और लड़की की शादी के संबंध में की गई गंभीर बातें—जो कभी-कभी उन अनजान लोगों को रिश्तेदार बना कर ही दम लेती हैं।

लेकिन मुझे सबसे ज़्यादा पसंद है—नदी से पानी लाती गाँव की बहुओं, बेटियों की न ख़त्म होने वाली बातों का रस। इन बातों का कोई सिरा नहीं होता। कभी किसी के पारिवारिक निजी बातों की चर्चा, तो कभी अपने-अपने घरों में सास, जेठानी, नन्दों के साथ रोज़ होने वाली अनबन का ज़िक्र; कभी अपनी ख़ास सहेली से अपने प्रेम प्रसंग के दौरान ली जाने वाली सलाहें, तो कभी आर्थिक बोझ के तले दबे परिवार की माली हालत से दो-चार होने की कोशिशों का ज़िक्र; तो कभी सांसारिक दायित्वों के बोझ से कुचली हुई, मृत पड़ गई इच्छाओं का निराशाजनक वर्णन—और न जाने क्या-क्या।

ख़ैर, अंत में बस इतना ही कहूँगी—जो भी है, ख़ूबसूरत है। जिस तरह एक कुँवारी लड़की अपनी ख़ाली माँग लेकर उसमें सिंदूर भरने वाली मोहब्बत का इंतज़ार करती है, उसी तरह मैं भी अपने राहगीरों का इंतज़ार करती रहूँगी—जो मेरी सूनी माँग पर अपने क़दमों से चलते हुए मोहब्बत का सिंदूर भरेंगे।

# १६ - सपनों की सैर

"सच में तुम मुझे अपने पार दूसरी तरफ़ की दुनिया के बारे में बताओगे?" नाव ने लगभग हैरान होकर पहाड़ से कहा।

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं! इसमें कौन सी बड़ी बात है? ये तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है। मैं हूँ ही इतना विशाल, बैठे-बैठे कहीं भी कुछ भी देख सकता हूँ, चाहे मेरे इस तरफ़ की दुनिया हो या उस तरफ़ की। और एक बात, मैं तुम्हें उस दूसरी तरफ़ की दुनिया के बारे में केवल बताऊँगा ही नहीं, बल्कि किसी रोज़ तुम्हें वहाँ ले भी चलूँगा।"

नाव (अपनी हैरानी को रोकते हुए): "तो फिर ठीक है। अब से तुम मुझे रोज़ सुबह अपनी उस दूसरी तरफ़ की दुनिया के बारे में एक-एक चीज़ बताओगे। वैसे भी इस नदी में बहते-बहते कई दिन हो चुके हैं, इसने बोला था कि ये मुझे दूसरी तरफ़ की दुनिया की सैर कराएगी। लेकिन महीनों बीत गए, ये केवल मुझे गोल-गोल घुमाए जा रही है। हमेशा मुझसे कहती रहती है, सब्र रखो, एक दिन तुम्हें मैं पहाड़ के दूसरी तरफ़ जरूर ले जाऊँगी। चलो ख़ैर छोड़ो। अच्छा! एक और बात, आज से तुम मेरे नए दोस्त बन गए हो।"

यह सब सुनकर पहाड़ के चेहरे पर एक जहरीली मुस्कान दौड़ गई।

नदी, नाव और पहाड़ के बीच की सारी बातचीत को सुन रही थी, और समझ भी रही थी कि किस तरह पहाड़ एक ख़ुराफ़ाती मनचले मजनू की तरह नाव को अपने जाल में फँसाने की पुरजोर कोशिश कर रहा है, और नाव भी एक नादान अल्हड़ लड़की की तरह उसकी बातों में आ फँसी है। तभी तो उसने पहाड़ की उसे दूसरी तरफ़ ले जाने वाली बात पर भरोसा कर लिया। और तो और, नदी को सबसे ज़्यादा दुख इस बात का था कि अब नाव को उसकी पुरानी सखी भी उसे ग़ैर लगने लगी है।

रात में नदी ने नाव को समझाने की कोशिश की।

नदी: "देख, मैं तेरी बहुत पुरानी सहेली हूँ। हमने सुख-दुख साथ बिताए हैं। बस मैं तुझसे इतना कह रही हूँ कि इस पहाड़ से बच के रहना। ये दिखने में जितना शरीफ लग रहा है, असल में उतना शरीफ है नहीं। मैं जानती हूँ, तुझे पहाड़ के पार की दुनिया देखने का बड़ा मन है, लेकिन उसके लिए तू थोड़ा सब्र रख।"

नाव: "तुम्हें तो मेरे हर दोस्त में कमी नज़र आती है। एक तो वो बेचारा पहाड़ मेरी वर्षों पुरानी हसरत को पूरा कर रहा है, जिसे तुम पूरा नहीं कर पाई, बस झूठे वायदे पर वायदे करती रहती हो। और तुम उस पर शक कर रही हो। मुझे तो लगता है कि तुम्हें मेरे और पहाड़ की दोस्ती से जलन हो रही है, या फिर तुम मुझे दूसरी तरफ़ की दुनिया देखने ही नहीं देना चाहती हो।"

नदी: "ऐसा नहीं है कि मैं तेरी पहाड़ के दूसरी तरफ़ की दुनिया देखने की ख्वाहिश पूरी नहीं करना चाहती, लेकिन मेरी दोस्त, उसमें वक्त लगेगा। और मुझे तेरी दोस्ती से जलन नहीं है, बस मुझे तेरी फ़िक्र है।"

नाव: “फ़िक्र अपनी जगह है, लेकिन तुम अब मेरे निजी मामलों में दखल मत दो।”

यह सुनकर नदी उदास हो गई और पूरी रात न सो सकी।

पहाड़ मनचले प्रेमी की तरह पूरी रात नाव के सपने देखता रहा और सुबह होने का इंतज़ार करता रहा। और यही हाल कुछ नाव का भी था, पूरी रात बस करवटें बदलती रही।

अगले दिन जैसे ही पहाड़ की चोटी पर सूरज की सुनहरी धूप आई, पहाड़ ने नाव को आवाज़ दी।

पहाड़: “अरे कहाँ ग़ायब हो गई?”

नाव: “मैं यहीं हूँ, अपनी सखी नदी के साथ।”

पहाड़: “अरे तुम्हें जानना नहीं है उस पार की दुनिया के बारे में? कल तो बेसब्र हुई जा रही थी।”

नाव: “हाँ-हाँ, अच्छा बताओ उस तरफ़ की दुनिया के बारे में।”

पहाड़: “अरी मेरी दोस्त, इतनी जल्दबाजी क्यों है? आज से मैं तुम्हें हर रोज़ उस तरफ़ की दुनिया के बारे में कुछ न कुछ बताऊंगा। बहुत खूबसूरत सफर रहेगा मेरा और तुम्हारा। तो बताओ, कहाँ से शुरू करूँ?”

नाव (चहकते हुए): “अच्छा, वहाँ की सुबह के बारे में बताओ।”

पहाड़: “उस पार की सुबह के क्या ही कहने! जब एक साथ पाँच सूरज निकलते हैं, तब पूरा गुलाबी आसमान सुनहरी धूप में नहा जाता है। पाँच

सूरज फिर भी गर्मी का नामोनिशान नहीं है। हल्की-हल्की ठंडी हवा मौसम को और सुहाना बना देती है।"

नाव (टोकते हुए): "गुलाबी आसमान?"

पहाड़: "तुम नई नहीं हो। जब भी मैं किसी को उस पार की दुनिया के बारे में बताता हूँ, उसे झूठ ही लगता है।"

नाव: "नहीं-नहीं, बस विश्वास नहीं हो रहा है। अच्छा, और बताओ।"

पहाड़: "और तुम्हें पता है, वहाँ कोई चाँद नहीं निकलता है, और न ही रात होती है। बस ये पाँच सूरज दोपहर होते-होते नीली रंग की रोशनी फैलाने लगते हैं, बस यही वहाँ की शाम और रात होती है। और एक बात, वहाँ दिन में तीन बार हल्की-हल्की बारिश भी होती है।"

नाव (आँखें फैलाते हुए): "अरे बाप रे!"

पहाड़: "और वहाँ, यहाँ की तरह नदी में पानी नहीं होता है, वहाँ शहद और दूध की नदियाँ बहती हैं। और उनमें चाँदी की नावें तैरती हैं। और एक ख़ास बात, उन नदियों में कभी कोई डूबता भी नहीं है।"

मासूमियत भरी नाव की आँखें पहाड़ की बातें सुनकर फैलती जा रही थीं। नदी भी पहाड़ की इन मनगढ़ंत कपोल-कल्पनाओं के जाल को समझ रही थी। लेकिन उसे समझ नहीं आ रहा था कि कैसे वह अपनी सहेली को पहाड़ के आगोश में आने से बचाए।

इस तरह पहाड़ और उसकी इन कपोल-कल्पनाओं का सफर यूँ ही चलता रहा। नाव और पहाड़ की दोस्ती को काफ़ी दिन बीत चुके थे। पहाड़ नाव

को घंटों तक दूसरी तरफ़ की दुनिया की मनगढ़ंत कहानियाँ सुनाता रहता था। नदी बेचारी अकेली दूर से अपनी पुरानी सहेली को देखती रहती, जिसके पास अब उससे बातें करने का भी समय नहीं था।

*नदी, नाव और पहाड़ के बीच की सारी बातचीत को सुन रही थी, और समझ भी रही थी कि किस तरह पहाड़ एक ख़ुराफ़ाती मनचले मजनू की तरह नाव को अपने जाल में फँसाने की पुरजोर कोशिश कर रहा है, और नाव भी एक नादान अल्हड़ लड़की की तरह उसकी बातों में आ फँसी है।*

एक रात फिर नदी ने नाव को समझाने की कोशिश की।

नदी: “सुन, अच्छा मेरी एक बात मानेगी?”

नाव: “क्या?”

नदी: “कल अपने नए दोस्त से बोल कि मुझे उस पार की दुनिया में ले चले।”

नाव: “इसमें क्या बड़ी बात है? मैं जब भी उससे बोलूँगी, तब ले जाएगा मुझे दूसरी तरफ़।”

नदी: “जब-तब नहीं! कल।”

नाव: “अच्छा ठीक है बाबा। कल ही जाऊँगी।”

नदी: “ठीक है, फिर बताना क्या हुआ।”

अगली सुबह नाव ने पहाड़ से कहा-

"बहुत दिन हो गए तुम्हारी बातें सुनते हुए। अब और इंतज़ार नहीं हो रहा मुझसे, मुझे उस पार की दुनिया दिखाने ले चलो।"

पहाड़ सकपका गया और बोला-

"अचानक क्या हो गया है तुम्हें?"

नाव (आँखें घुमाते हुए): "मैं बिल्कुल ठीक हूँ, बस मुझे उस पार जाना है।"

पहाड़ (मन ही मन): "हाय मरा! कौन सा दिन था जो इस से मैंने ये ऊटपटांग वायदा कर दिया।"

फिर थोड़ी देर बाद लगभग झुंझलाते हुए बोला-

"अरे, वहाँ आज नहीं जा सकते। आज कुछ दिक़्क़त है।"

नाव (लगभग नाराज़ होते हुए): "तो फिर कब मुझे मौका मिलेगा उस पार की दुनिया देखने का? जब से तुमसे मुलाक़ात हुई है, बस झूठे वायदे ही किए जा रहे हो कि आज दिखाऊँगा, कल दिखाऊँगा।"

नाव को बिगड़ता देख पहाड़ बोला-

"अच्छा-अच्छा, नाराज़ क्यों होती हो? मैं तुम्हें कल सुबह ले चलूँगा उस पार।"

नाव: "ठीक है, मैं कल सुबह तुम्हें तैयार मिलूँगी।"

अगली सुबह नाव जागकर पहाड़ का इंतज़ार कर रही होती है। लेकिन ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था कि नाव को पहाड़ का इंतज़ार करना पड़े।

अपनी कहानियों के सफर के दौरान वह हमेशा नाव से पहले पहुँच जाता था।

सूरज सर पर आ गया था लेकिन पहाड़ का अभी तक कोई अता-पता नहीं था। नाव ने कई बार पहाड़ को आवाज़ दी, लेकिन कोई नहीं आया।

इसी तरह इंतज़ार करते-करते पूरा दिन गुज़र गया, शाम होने को आ चुकी थी। नाव की आँखें धीरे-धीरे गीली होना शुरू हो चुकी थीं, उसकी आँखों में उस पार की दुनिया के वो सारे दृश्य घूम रहे थे जिनका ज़िक्र पहाड़ ने बीते कुछ दिनों में किया था।

इतने में पीछे से एक आवाज़ आई — “चलो, अब घर चलते हैं।”

जब नाव ने पीछे मुड़कर देखा तो, उसकी पुरानी सखी अपना एक हाथ आगे बढ़ाए खड़ी थी।

और नाव बिना कुछ कहे-सुने अपनी सहेली से गले लग कर रो पड़ी।

# १७- यादों का पिटारा

मोहन ने शॉल को थैले में से निकालकर बड़े क़रीने से तह कर दिया और फिर शॉल को रखने के लिए अलमारी के सबसे ऊपर वाले खाने में रखे सूटकेस को नीचे उतारा। सूटकेस खोलते ही मोहन की आँखों में एक अजीब सी चमक आ गई। हमेशा की तरह सूटकेस खोलने के बाद मोहन उसमें रखी हुई चीज़ों को निहारने लगा। इस सूटकेस में एक बिलकुल नई साड़ी, कुछ बालों में लगाने वाली चिमटियाँ, किसी लड़की का एक पुराना पर्स, किसी लड़के का पुराना स्वेटर व रूमाल रखा हुआ है। हर बार जब भी मोहन कोई सामान रखने के लिए इस सूटकेस को खोलता है, तो नया सामान रखने से पहले वह उसमें रखे पुराने सामान को बारी-बारी से निकालकर देखता है।

किसी भी सामान को उठाते समय उसके होंठों पर एक मुस्कान होती है तो आँखों में एक उदासी। फिर उस सामान को अपने हाथ में लेकर यूँ स्पर्श करता है मानो वह कोई सामान नहीं बल्कि कोई मनुष्य हो। फिर थोड़ी देर के लिए धीरे से उस सामान को अपने सीने से लगाकर रखने के बाद वह उसे वापस उसी जगह रख देता है। इस दरमियान जब मोहन एक-एक कर के सामान को देख रहा होता है, तब उसके मन में क्या चल रहा होता है, ये तो वही जाने, लेकिन उसकी भीगी आँखें उसके अंदर के जज़्बातों की गवाही देने के लिए काफ़ी होती हैं।

और फिर जिस सामान को रखने के लिए उसने सूटकेस खोला होता है, उसे रखने के बाद सूटकेस को बंद करके अलमारी के ऊपर वाले खाने में रख देता है। और इस बार भी उस नई शॉल को सूटकेस में रखने के बाद धीरे से अपनी भीगी आँखों को पोंछते हुए मोहन बाहर चला जाता है।

मोहन के बाहर जाते ही सूटकेस के अंदर हलचल तेज़ हो गई थी। और हमेशा की तरह किसी नए सामान को सूटकेस में रखने के बाद होने वाली यह हलचल आम बात थी। सूटकेस के अंदर शॉल ने देखा कि साड़ी और चिमटियाँ उसे देखकर हल्के-हल्के मुस्कुरा रही थीं। और स्वेटर, पर्स और रूमाल उसे इस तरह एकटक देख रहे थे मानो उन लोगों को शॉल से ढेरों बातें करनी हों।

सूटकेस के अंदर एक ऐसी ख़ामोशी थी जो किसी भी पल टूटने को बेताब थी। जैसे किसी ऐसे बाँध में रुके हुए पानी की तरह, जो किसी भी पल टूट सकता है।

और ऐसा जल्दी ही हुआ। उस ख़ामोशी को तोड़ने का सारा श्रेय गया साड़ी को। साड़ी ने कहा, “घबराओ नहीं बेटी, हम भी तुम्हारी ही तरह हैं। हमको भी लाकर इस सूटकेस में न जाने कब से बंद कर दिया गया है।”

शॉल (हिम्मत दिखाते हुए धीरे से): “वो तो ठीक है दीदी, लेकिन ये बताओ आप लोग यहाँ कब से बंद हैं और क्यों बंद हैं?”

साड़ी (गंभीर होते हुए): “देख बेटी, हम में से हर किसी को यहाँ अलग-अलग समय पर लाया गया है, या यूँ कहें कि अलग-अलग समय से बंद

किया गया है। लेकिन शायद सबसे पहले मैं यहाँ आई थी। और सबसे आख़िरी में वो स्लेटी रंग की चिमटी। और आज तुम।"

शॉल: "और आप लोगों को इस्तेमाल करने के लिए बाहर कब-कब निकाला जाता है?"

साड़ी (हँसते हुए): "अरे बेटा, हम कुछ उन चुनिंदा बदनसीब चीज़ों में से हैं, जिनकी क़िस्मत में इस्तेमाल होना शायद लिखा ही नहीं है। या यूँ कहें कि जिस शख़्स के इस्तेमाल के लिए हम लोगों को लाया गया था, इस घर की दीवारें न जाने कब से उस शख़्स के आने का इंतज़ार कर रही हैं। न जाने कब वो दिन आएगा और वो शख़्स आकर हमें इस्तेमाल कर आज़ाद कराएगा।"

चिमटी: "शायद हम में से कुछ लोग तो ऐसे हैं जो पहले तो इस्तेमाल हो रहे थे लेकिन इस घर के मालिक ने हम लोगों को उस शख़्स से छीनकर यहाँ लाकर बंद कर दिया है। और तब से हम यहीं बंद पड़े हैं।"

*हम कुछ उन चुनिंदा बदनसीब चीज़ों में से हैं, जिनकी क़िस्मत में इस्तेमाल होना शायद लिखा ही नहीं है। या यूँ कहें कि जिस शख़्स के इस्तेमाल के लिए हम लोगों को लाया गया था, इस घर की दीवारें न जाने कब से उस शख़्स के आने का इंतज़ार कर रही हैं।*

साड़ी: "चिमटी सही कह रही है।"

शॉल: “ओह! ऐसा लगता है कि यहाँ मौजूद हर किसी के पास यहाँ होने की कोई न कोई वजह है। तो क्या मैं आप लोगों की कहानी जान सकती हूँ?”

साड़ी: “हाँ, क्यों नहीं। सबसे पहले मैं बताती हूँ अपने बारे में क्योंकि शायद मैं ही सबसे पहले यहाँ आई थी। मुझे यहाँ आए चार साल हो चुके हैं। मेरी भी कहानी बड़ी अजीब है।

आज से चार साल पहले की बात है, इस घर के मालिक मोहन को अपने किसी बहुत ख़ास शख़्स के जन्मदिन पर कुछ तोहफ़ा देना था। शायद उस ख़ास शख़्स का नाम कीर्ति था। काफ़ी दिनों तक सोचने के बाद उसने एक दुकान से मुझे ख़रीदा। लेकिन उन दिनों मोहन और कीर्ति की बातचीत बंद थी। अब सवाल यह था कि मुझे (साड़ी) को कीर्ति तक पहुँचाया कैसे जाए?

तब मोहन ने अपने एक दोस्त को, जो कि मोहन और कीर्ति दोनों को जानता था, मुझे (साड़ी) कीर्ति तक पहुँचाने की ज़िम्मेदारी दी। और उस दोस्त ने अपना काम बख़ूबी कर भी दिया। लेकिन तीन महीने बाद कीर्ति के मन में न जाने क्या आया कि उसने मुझे उसी दोस्त के ज़रिए मोहन को वापस भिजवा दिया। और तब से मोहन ने मुझे यहीं बंद कर रखा है। मेरी भी किस्मत देखो, जिस शख़्स के लिए मुझे खरीदा गया था, बिना एक दिन भी उसके साथ गुज़ारे इस संदूक में बंद हूँ। लेकिन मुझे पूरा भरोसा है कि कीर्ति एक न एक दिन मुझे अपने शरीर पर सजाएगी और मुझे इस क़ैद से आज़ाद कराएगी।”

स्वेटर: "बहन, एक बात तुमने ग़लत बोली। सबसे पहले यहाँ तुम नहीं, मैं आया था। तुम्हें तो केवल चार साल हुए हैं, मैं तो पिछले पाँच साल से इंतज़ार कर रहा हूँ कि मोहन मुझे पहनने के लिए दुबारा कब निकालेगा।"

शॉल: "मोहन! तो क्या आपको मोहन इस्तेमाल करता था?"

स्वेटर: "जी हाँ! हुआ यूँ कि एक बार मोहन कीर्ति के साथ किसी बाज़ार में गया था। ठंड के दिन थे, कीर्ति को ठंड लग रही थी, इसका अंदाज़ा जैसे ही मोहन को हुआ, उसने अपना स्वेटर (मुझे) उतारकर कीर्ति को पहना दिया। काफ़ी ना-नुकुर करने के बाद कीर्ति ने मुझे पहन लिया। और वो दिन है और आज का दिन है, उस दिन के बाद से मोहन ने मुझे कभी नहीं पहना और उल्टा मुझे यहाँ बंद कर दिया।

मैंने मोहन को कई बार कहते हुए सुना है कि मुझमें (स्वेटर में) कीर्ति की ख़ुशबू बसती है। इसलिए न तो अब मुझे वो कभी पहनेगा और न ही कभी धोएगा।"

शॉल (चिमटियों की तरफ़ इशारा करते हुए): "और आप लोग यहाँ कैसे आ गईं?"

चिमटियाँ: "क्या ही बताएं। एक वक्त था जब हम कीर्ति के बालों में शान से सजी होती थीं। लेकिन होता कुछ यूँ था कि मोहन जब भी कीर्ति से मिलता, तब वह चलते समय कीर्ति के बालों से हमें चुपचाप चुरा लेता था। और कीर्ति के लाख माँगने पर भी वापस नहीं देता था और हमको यहाँ लाकर बंद कर देता था। अगर दूसरे शब्दों में कहें तो हम में से हर चिमटी मोहन और कीर्ति की एक-एक मुलाक़ात की निशानी है। आज

भी जब कभी मोहन सूटकेस खोलता है, तो हम में से हर एक चिमटी में कीर्ति के बालों की ख़ुशबू महसूस करता है।"

शॉल (हँसते हुए): "वाह! क्या आशिक़ है मोहन! और अच्छा, रूमाल, तुम्हारी क्या कहानी है? तुम्हें देखकर लगता है कि तुम्हें तो मोहन ने ख़ुद के लिए खरीदा होगा।"

रूमाल (शरमाते हुए): "हाँ, सही कहा आपने। मेरी कहानी भी इस स्वेटर भाई की तरह है। दरअसल शुरुआत में तो मेरा ठिकाना मोहन की जेब ही था, लेकिन एक रोज़ कीर्ति और मोहन साथ बैठकर खाना खा रहे थे। खाना खाने के बाद कीर्ति अपने हाथों को साफ़ करने के लिए कुछ ढूँढ़ रही थी, इतने में मोहन ने अपनी जेब से मुझे निकालकर कीर्ति के हाथ में थमा दिया। पहले तो कीर्ति ने मना किया, फिर उसने अपने हाथों और मुँह को मुझसे (रूमाल) साफ़ किया और वापस मोहन को दे दिया।

जब कीर्ति ये सब कर रही थी, तब उसके होंठों की लिपस्टिक के निशान मेरे ऊपर पड़ गए थे। और यहीं से मेरी क़ैद का सिलसिला शुरू हो गया। और तब से बिना धुले हुए, कीर्ति के होठों के निशानों को अपने भीतर सँजोकर बैठा हूँ। आज भी मोहन मेरे ऊपर बने उन निशानों पर अपनी उँगलियाँ फिराकर कीर्ति के होने का एहसास महसूस करता है।"

शॉल (मुस्कुराते हुए): "और पर्स! अब तुम भी बता ही दो, अपने और कीर्ति के रिश्ते के बारे में।"

पर्स: "मैं भी उसी कीर्ति का साथी था। चार साल पहले जब मोहन कीर्ति से बिछड़ रहा था, तब कीर्ति ने मुझे (पर्स) मोहन को सौंपा था। मोहन ने मुझे चुराया नहीं था, कीर्ति ने ख़ुद ही मुझे मोहन को दिया था। जब ये सब

हो रहा था, तब मोहन और कीर्ति दोनों की आँखें नम थीं। और फिर मोहन ने मुझे यहाँ लाकर इन लोगों के साथ बंद कर दिया।

मुझे यहाँ मौजूद हर शख़्स से जलन है, क्योंकि मेरे अलावा यहाँ मौजूद हर शख़्स एक ऐसी कहानी का गवाह है जिसमें कीर्ति और मोहन साथ थे, ख़ुश थे। लेकिन मैं इकलौता अभागा हूँ जो उन दोनों के बिछड़ने की निशानी हूँ।"

शॉल (लंबी साँस लेते हुए): "तुम लोगों की बातें सुनकर मुझे भी लगने लगा है कि मोहन ने मुझे भी कीर्ति के लिए ही खरीदा है। और मुझे भी अब इस सूटकेस में बंद रहना पड़ेगा। बहरहाल, मोहन ने जिस तरह कीर्ति की यादों को हम लोगों के रूप में सहेजकर रखा है, उससे तो यही जान पड़ता है कि मोहन आज भी कीर्ति से उतना ही प्रेम करता है जितना पाँच साल पहले करता था। और वह आज भी कीर्ति का इंतज़ार कर रहा है। और हमारी आज़ादी भी कीर्ति और मोहन के एक होने में ही है। हमें ऊपरवाले से दरख़्वास्त करनी चाहिए कि जल्द ही वो दिन आए जब साड़ी दीदी कीर्ति की सुंदरता में चार चाँद लगा रही हों।"

सभी एक सुर में बोले: "ऐसा जल्द ही होगा।"

# १८-वो एक दिन

पता है, मुझे साल का सबसे प्यारा दिन कौन-सा लगता है?

नहीं पता? चलो, मैं बताती हूँ। होली!

होली है मेरा सबसे पसंदीदा और प्यारा दिन — जिस दिन मैं बहुत खुश होती हूँ। क्योंकि पूरे साल में बस वही एक ऐसा दिन होता है जब मैं खुली हवा में सांस लेती हूँ, अपनी आँखों से दुनिया के रंगों को देखती हूँ।

वैसे तो पूरे साल भर में बमुश्किल कोई भी इंसान मुझे देखने तक नहीं आता, मुझसे बात तक नहीं करता। न किसी को मेरी कोई खोज-ख़बर होती है कि मैं कहाँ हूँ, कैसी हूँ, किन हालातों में हूँ।

लेकिन होली के दिन यही स्वार्थी इंसान न केवल मुझे स्याह अंधेरे से बाहर निकाल कर आज़ाद करता है, बल्कि मेरे पूरे शरीर को दुरुस्त करता है, मेरी साफ़-सफ़ाई करता है, मेरी छोटी-मोटी बीमारियों का इलाज करवाता है। मेरी हर वो आमद करता है जिससे कि मैं होली के दिन इनके साल के सबसे रंगीले पलों में इनका बेहतरीन हमसफ़र बन सकूँ।

कुछ यूँ समझिए कि उस एक दिन के लिए मैं इनके जिगर का टुकड़ा बन जाती हूँ, इनकी ख़ुशियों की चाबी हूँ।

अलग-अलग तरह के रंगों में सने लोग, हँसते-खेलते, हुड़दंग करते लोग, अपनी मस्ती में मगन लोग, ख़ुशियाँ बाँटते लोग — मुझे अपने हाथों में इस शान से लहराते हैं जैसे मैं किसी ऐतिहासिक वीर योद्धा की तलवार हूँ।

और मैं भी, इस एक दिन के लिए इंसानों का हमसफ़र बनने में कोई कसर नहीं छोड़ती।

पानी की रंगीली धारों को वहाँ तक पहुँचाने की पूरी कोशिश करती हूँ जहाँ तक इंसान चाहता है।

और ये सब मैं केवल अपना काम समझकर नहीं करती, बल्कि उस इंसान की मुस्कुराहट के लिए करती हूँ जिसने मुझे अपने हाथों में सजाया हुआ होता है।

क्योंकि वह इंसान कितना भी स्वार्थी क्यों न हो, लेकिन एक दिन के लिए ही सही — मुझे याद तो करता है, मेरा ख़्याल तो रखता है।

होली के दिन इंसानी दुनिया मुझे इतने रंगों से रूबरू करा देती है कि इतने स्याह अंधेरे में पड़े रहने के बावजूद भी उस दिन की तस्वीरें मेरी आँखों में साल भर डेरा डाले रहती हैं।

इतना सब कुछ होता है उस एक दिन में — देखने को, समझने को, सुनने को — कि उसके सामने साल भर का ख़ालीपन भी भूल जाती हूँ।

और हाँ, रंगों से सराबोर ख़ुशियों के ये पल मेरे लिए भी उतने ही क़ीमती हैं जितने इंसानों के लिए।

*इंसानी जज़्बातों का यह सालाना जलसा ही मुझे जीने की उम्मीद देता है — साल भर के स्याह अंधेरे और अकेलेपन से लड़ने की ताक़त देता है।*

इंसानी जज़्बातों का यह सालाना जलसा ही मुझे जीने की उम्मीद देता है — साल भर के स्याह अंधेरे और अकेलेपन से लड़ने की ताक़त देता है।

मैं हमेशा ऐसा सोचती हूँ कि इंसानों के इस रंगीले दिन का कोई अंत न हो — बस केवल शुरुआत हो।

लेकिन मेरे सोचने से क्या होता है? ये तो प्रकृति का नियम है — जहाँ शुरुआत है वहाँ अंत है, और अंत ही शुरुआत है।

और अंत यह है —

कि इस एक दिन की मेरी खुशामद की भरपाई की क़ीमत है साल भर का स्याह अंधेरा और अकेलापन।

# १९-मोहब्बत की इलायची

मैं एक फूलदानी हूँ। पिछले कुछ सालों से मेरा आशियाना एक लकड़ी की मेज़ है, जो एक क़ालीन के ऊपर आराम फ़रमा रही है और जिसे चारों तरफ़ से मखमली सोफ़ों ने घेर रखा है। मैं कई दिनों से एक अजीब सी खामोशी अख़्तियार किए शायद किसी का बेसब्री से इंतज़ार कर रही थी। इंतज़ार किसका, इसका जबाब मेरे पास नही था।

और एक सुबह मेरा वो इंतज़ार तब पूरा होता है। मेरी मुलाक़ात मेज़ पर रखे सफ़ेद गुलाब के फूलों के एक गुच्छे से हुई। उस मुलाक़ात की यादें आज भी मेरे ज़ेहन में ताज़ा हैं। सफ़ेद रंग के गुलाब उस घने गुच्छे में ऐसे चमक रहे थे जैसे बारिश के बाद आसमान में सूरज चमकता हो। उनकी पंखुड़ियाँ कुछ यूँ कोमल थीं मानो स्वर्ग की अप्सराओं के गाल हों। उन पंखुड़ियों पर पानी की छोटी-छोटी बूँदें कुछ इस तरह लग रही थीं जैसे स्वर्ग की अप्सरा के गाल पर तिल की जगह मोतियों ने ले ली हो। और उस फूलों के गुच्छे से आती सुगंध! आए हाए, क्या कहने? अगर मैं कहूँ कि हिरण को कस्तूरी की जो सुगंध महसूस होती होगी, वैसा ही एहसास मुझे उन फूलों के गुच्छे से हुआ — तो कोई बड़ी बात नहीं होगी।

ख़ैर, जितनी दिलकश और हसीन उसकी सूरत थी, उससे ज़्यादा ज़िंदादिल और दोस्ताना शख़्सियत थी उसकी। वो दुनिया के उन चुनिंदा दिलफ़ेंक आशिक़ों में से एक था जो मोहब्बत को इलायची की तरह

अपनी हथेली पर लेकर चलते हैं — और ज़िंदगी के सफ़र में मिलने वाले हर शख़्स को वो इलायची पेश करते हैं। उसकी ज़ुबान से निकले बोल प्यार, इश्क़ और मोहब्बत की चाशनी में डूबे रहते थे।

उस मुलाक़ात के आधे वक्त तक तो वो फूलों का गुच्छा मुझे बस यूँ देखता रहा जैसे कोई शिकारी अपने शिकार पर नज़र रखता है। और उस आधे वक्त की पूरी ख़ामोशी को हमारी गुफ़्तगू ने तोड़ा। आदतन, फूलों के उस गुच्छे ने मुझे अपना हमसफ़र बनाने की ख़्वाहिश कुछ यूँ पेश की—

गुच्छा (मुस्कुराते हुए) — पता है तुम्हें, तुम कितनी ख़ुशक़िस्मत हो जो इस घर के मालिक ने तुम्हें मुझसे मिलाया।

फूलदानी — ख़ुशक़िस्मती या बदक़िस्मती, ये तो ख़ुदा ही जाने।

गुच्छा — ख़ुदा! मैं तो ख़ुद, ख़ुदा की सबसे बेशकीमती ने'मत हूँ।

फूलदानी (इठलाते हुए) — कुछ पते की बात है तो बताओ, वर्ना अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना बंद करो।

गुच्छा — बात ऐसी है कि इस घर का मालिक चाहता है कि हम दोनों एक साथ रहें, और हम मिलकर इस कमरे की सुंदरता में चार चाँद लगा दें।

फूलदानी — अच्छा! लगता है जरूर मालिक को कोई ग़लतफ़हमी हो गई है। जब मेरी मौजूदगी ही इस कमरे को हसीन बना रही है, तो तुम्हारी क्या ज़रूरत?

गुच्छा — अरे! इतना घमंड! वैसे तुम्हारी ये अदा मुझे पसंद आई।

फूलदानी — तो फिर मैं क्या करूँ? चलो अब अपने काम से काम रखो।

गुच्छा — अच्छा, मेरे दिलो-दिमाग़ में काफ़ी देर से एक बात आ रही है, अगर तुम ग़ुस्सा न हो, तो बताऊँ?

फूलदानी (आँखें फाड़कर) — अगर ग़ुस्सा होने वाली बात होगी, तो क्यों न होऊँगी? जो भी बोलना है, सोच-समझकर बोलो।

*वो दुनिया के उन चुनिंदा दिलफ़ेंक आशिक़ों में से एक था जो मोहब्बत को इलायची की तरह अपनी हथेली पर लेकर चलते हैं — और ज़िंदगी के सफ़र में मिलने वाले हर शख़्स को वो इलायची पेश करते हैं।*

गुच्छा — देखो, अब जब हमें साथ ही रहना है, तो क्यों न दोस्ती कर लें?

फूलदानी — कैसी दोस्ती? और क्यों करें दोस्ती?

गुच्छा — अरे, इतने सवाल-जवाब क्यों? दोस्ती तो ऐसा ख़्वाब है जिससे हर रिश्ते की शुरुआत होती है।

फूलदानी — तो हमारे बीच कौन सा रिश्ता है जिसका दोस्ती का ख़्वाब अधूरा पड़ा है?

गुच्छा — दिल की आँखों से देखो, तुम्हें ज़रूर दिखेगा — एक रिश्ता… प्यार, इश्क़ और मोहब्बत का। (आँख मटकाते हुए)

फूलदानी — तुम्हारी अक़्ल पर पत्थर पड़ गया है क्या? न कोई जान-पहचान, न कोई बातचीत — और सीधा प्यार, इश्क़, मोहब्बत?

गुच्छा — अरे नाराज़ क्यों हो रही हो? जान-पहचान के लिए तो सारी ज़िंदगी पड़ी है। मेरा तो मानना है — ज़िंदगी में जो करना है, वो आज ही कर लो। कल किसने देखा?

फूलदानी — और मेरा मानना है कि किसी ग़ैर से ज़्यादा बातचीत नहीं करनी चाहिए, और ख़ासकर तुम्हारे जैसे मनचले मजनुओं से।

गुच्छा — ग़ैर? जानेमन, एक बात जान लो — अब तुम्हारा मेरा साथ तब तक है जब तक मैं इस दुनिया से रुख़सत न हो जाऊँ। तुम केवल मेरे लिए बनी हो और मैं तुम्हारे लिए।

फूलदानी — अपनी बकवास बंद करो। मालिक ने साथ रहने के लिए कहा है, आशिक़ी करने के लिए नहीं।

गुच्छा — मैं कहाँ कह रहा हूँ आशिक़ी करने को? मैं तो सिर्फ़ दोस्ती का हाथ बढ़ा रहा हूँ। इसमें हर्ज ही क्या है?

फूलदानी — तुम्हें क्यों दिखेगा हर्ज ? अब ये बताओ — तुम अपनी ज़ुबान बंद करने का क्या लोगे?

गुच्छा — ज़ुबान! लो, कर लेता हूँ बंद। लेकिन उससे पहले तुम्हें एक शेर सुनना पड़ेगा मेरा।

और मैं चुप हो गई। लेकिन फूलों का वो गुच्छा मेरी चुप्पी को मेरी रज़ामंदी समझ बैठा — और एक शेर पढ़ने लगा।

इस तरह हमारे बीच की पहली गुफ़्तगू का दौर उस शेर के साथ ख़त्म हुआ। लेकिन मुझे एक बात बहुत अजीब लगी — जब वो शेर सुना रहा था, तो मुझे उसकी आँखों में एक दर्द दिखाई दिया। और मैंने महसूस

किया कि उस दर्द का एहसास उसे पहले से था, बस अपनी मुस्कुराहटों की छाँव में वो दर्द छिपा रहा था।

ख़ैर, मैं रात भर उस फूल के गुच्छे के बारे में सोचती रही। सच बताऊँ, तो मैं भी उसके "मोहब्बत की इलायची" का स्वाद अपने मुँह में महसूस कर रही थी। लेकिन मेरा दिमाग़ उस इलायची के स्वाद में कुछ कड़वापन तलाश रहा था — इसी वजह से मुझे उसके मोहब्बत के पैग़ाम को क़बूल करने की कोई जल्दी नहीं थी। सोच रही थी, पहले इस मोहब्बत आज़माइश तो की जाए… और यह सोचते-सोचते मैं सो गई।

गुच्छे और मेरे बीच की नोंकझोंक दो दिन इसी तरह चलती रही।

एक सुबह जब मेरी नींद खुली, तो मेरी आँखें बस गुच्छे को देखने के लिए बेताब थीं। लेकिन ये क्या — गुच्छा तो वहाँ था ही नहीं! उसकी राह तकते-तकते सुबह से दोपहर हो गई। तभी मेरे कानों में किसी के बात करने की आवाज़ आई। कोई किसी से कह रहा था — "उन फूलों की उम्र १-२ दिन की होती है, अच्छा किया तुमने उन सफ़ेद गुलाबों को मेज़ से हटा दिया।"

मैं समझ चुकी थी — उस फूल के गुच्छे की उम्र पूरी हो चुकी थी और वो इस दुनिया को अलविदा कह चुका था। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था… मेरी आँखों से आँसू पता नहीं क्यों बहते जा रहे थे। और उस समय मेरे कानों में उसके वो अल्फ़ाज़ गूंज रहे थे —

"तुम्हारा मेरा साथ तब तक है जब तक मैं इस दुनिया से रुख़सत न हो जाऊँ।"

और फिर मुझे उसका वो शेर याद आने लगा, जो उसने सुनाया था:

हमेशा देर कर देता हूँ मैं हर काम करने में

ज़रूरी बात कहनी हो, कोई वादा निभाना हो।

उसे आवाज़ देनी हो, उसे वापस बुलाना हो —

हमेशा देर कर देता हूँ मैं।

मदद करनी हो उसकी, यार की ढाँढस बँधाना हो,

बहुत देरिना रास्तों पर किसी से मिलने जाना हो —

हमेशा देर कर देता हूँ मैं।

*मैं भी उसके "मोहब्बत की इलायची" का स्वाद अपने मुँह में महसूस कर रही थी। लेकिन मेरा दिमाग़ उस इलायची के स्वाद में कुछ कड़वापन तलाश रहा था*

बदलते मौसमों की सैर में दिल को लगाना हो,

किसी को याद रखना हो, किसी को भूल जाना हो —

हमेशा देर कर देता हूँ मैं।

किसी को मौत से पहले किसी ग़म से बचाना हो,

हक़ीक़त और थी कुछ, उसको जा के ये बताना हो —

हमेशा देर कर देता हूँ मैं हर काम करने में।

# २० - सुंदरता

स्कूल की छुट्टी होने वाली घंटी बज चुकी थी। सारे बच्चे हुड़दंग मचाते हुए क्लासरूम से बाहर निकल रहे थे। थोड़ी ही देर में बच्चों की शरारतों का वह कोलाहल सन्नाटे में बदलने वाला था।

रोज़ की तरह लकड़ी की वह बेंच, जिस पर बच्चे बैठते हैं, बच्चों को जाते देख मुस्कुरा रही थी और मन ही मन उन्हें शुक्रिया बोल रही थी।

वैसे बेंच का बच्चों के लिए यह रवैया हमेशा से ऐसा नहीं था। बेंच की इस मुस्कान और शुक्रिया का कारण जानने के लिए मुझे आपको एक साल पीछे लेकर जाना पड़ेगा।

लेकिन उससे पहले मैं आपको अपना परिचय दे देता हूँ। मैं हूँ स्कूल की एक क्लास का ब्लैकबोर्ड। यूँ तो मैं कम बोलने वाला व्यक्ति हूँ, लेकिन ख़बर मुझे पूरी क्लास की होती है, क्योंकि जहाँ मुझे टांगा गया है, वहाँ से मेरी नज़र क्लास की हर चीज़ पर होती है।

दरअसल, पिछले साल यह नई बेंच इस क्लास में लाई गई थी। लकड़ी की यह बेंच बड़ी ही सुंदर थी और इस पर की गई चमकदार पॉलिश इसकी सुंदरता में चार चाँद लगाती थी। लेकिन जितनी सुंदर, उतनी ही ग़ुस्सैल भी थी। उसके सबसे बड़े दुश्मन थे इस क्लास के छोटे बच्चे। उसे

हमेशा इस बात की शिकायत रहती थी कि ये बच्चे उसकी सुंदरता ख़राब कर रहे हैं।

बच्चे तो बच्चे! कभी उनके अंदर का चित्रकार बाहर आकर बेंच के ऊपर पता नहीं कौन-सी दुनिया जहाँ के चित्र उकेर देता था, तो कभी खाना खाते समय बच्चों के टिफ़िन से गिरा खाना बेंच की सुंदरता को कम करता था। लेकिन सबसे ज़्यादा तो ग़ुस्सा बेंच को तब आता था जब बच्चे खेल-खेल में बेंच के ऊपर दौड़ लगाते थे और उनके जूतों से निकली मिट्टी बेंच के ऊपर लग जाती थी।

बेंच हर दूसरे दिन ख़ुद को मन ही मन कोसती रहती थी कि इन शरारती और नालायक बच्चों से उसका पीछा कब छूटेगा। जैसे-जैसे सुबह बच्चों का स्कूल में आना शुरू होता था, बेंच का मिज़ाज गर्म होता जाता था और वह पूरे दिन नाक-भौं सिकोड़कर स्कूल की छुट्टी होने का इंतज़ार करती थी।

ख़ैर, जैसे-तैसे वह साल निकला और गर्मी की छुट्टियाँ आ गईं। बेंच मन ही मन सोचकर खुश हो रही थी कि इन गर्मियों की छुट्टियों में वह सुकून से रहेगी और उसकी ज़िंदगी को नरक बनाने वाले और सुंदरता को नुक़सान पहुँचाने वाले इन शरारती बच्चों से उसे छुटकारा मिलेगा।

आख़िरी दिन बच्चों के जाने के बाद साफ़-सफ़ाई कर क्लास को बाहर से बंद कर दिया गया। और यह वह पल था जिसका बेंच पिछले चंद रोज़ से बेसब्री से इंतज़ार कर रही थी।

शुरुआत के कुछ दिन तो बेंच पूरे दिन मुस्कुराती रहती थी और अपने ख़यालों में खोई रहती थी। चुप्पी उसके लिए सुकून बन गई थी। कोई शोर

नहीं, कोई बच्चे नहीं, कोई उसके ऊपर दौड़ने वाला नहीं। वह अपनी चमक को निहारती रहती, मन ही मन सोचती — "अब कोई मुझे गंदा नहीं करेगा।"

लेकिन जैसे-जैसे दिन बीते, बेंच का सुकून धीरे-धीरे एक अजीबो-ग़रीब बेचैनी में तब्दील होने लगा और इस दफ़ा उसकी बेचैनी की वजह उसका अकेलापन था।

और उस अकेलेपन की वजह थी बच्चों की ग़ैर-मौजूदगी।

बेंच के ऊपर धूल की परत जमनी शुरू हो गई थी। जहाँ-तहाँ उस पर मकड़ियों ने जाले सजा दिए थे। लेकिन यह पहली बार था जब बेंच को अपनी सुंदरता की कोई परवाह नहीं हो रही थी।

वह तो अंदर ही अंदर घुट रही थी, अकेलापन बेंच को अंदर ही अंदर खाए जा रहा था। उसे कुछ समझ ही नहीं आ रहा था।

*लेकिन जैसे-जैसे दिन बीते, बेंच का सुकून धीरे-धीरे एक अजीबो-ग़रीब बेचैनी में तब्दील होने लगा और इस दफ़ा उसकी बेचैनी की वजह उसका अकेलापन था।*

एक रोज़ बदहवासी की हालत में, पिछले साल बीता एक-एक पल बेंच की आँखों के सामने से गुजरने लगा। उसे याद आने लगा—

बच्चों का शोर, उसके ऊपर पेन से बनाई गईं बिना सिर-पैर की डिज़ाइनें, उनके टिफ़िन से आती खाने की खुशबू, उसके ऊपर पड़े जूतों के निशान,

उनका हँसना, उनका रोना, उनकी शरारतें, उनका नटखटपन — उनका सबकुछ।

और धीरे-धीरे उसकी बदहवासी आँसुओं में बदलने लगी।

मैं बेंच के साथ यह सब होता हुआ देख रहा था। वैसे तो मैं बेंच के अक्खड़ स्वभाव के कारण उससे बहुत कम बात करता था। लेकिन उस दिन उसके आँसुओं का गीलापन मुझे रोक नहीं पाया। मैंने उससे पूछा —

"क्या हुआ बहन?"

अचानक मेरी आवाज़ सुनकर बेंच अपने आँसुओं को छुपाने लगी। वह मुझे कुछ बोलना चाह रही थी, लेकिन उसके हलक से आवाज़ नहीं निकल पा रही थी।

ब्लैकबोर्ड — "मैं तुम्हारी ख़ामोशी और तुम्हारे आँसुओं को पढ़ सकता हूँ। तुम तो यही चाहती थीं न — सुकून के पल?"

इस दफ़ा बेंच के मुँह से अल्फ़ाज़ फूट पड़े —

बेंच — "अगर इसे सुकून कहते हैं भैया, तो नहीं चाहिए मुझे ऐसा सुकून। मैं बावली हो गई थी। मुझे लगता था मेरी सुंदरता ही मेरा अस्तित्व है — उसके परे कुछ नहीं है। न ये क्लास, न ये बच्चे।

लेकिन भैया, मुझे मेरी गलती का पूरा-पूरा एहसास हो गया है। मुझे समझ आ चुका है — मेरे होने की वजह से बच्चे यहाँ नहीं हैं, बच्चों की वजह से मैं यहाँ हूँ। और मैं इतनी नासमझ हूँ कि यह बात मुझे इतनी देर से समझ में आई।"

ब्लैकबोर्ड — "अरे वाह! देर आए, दुरुस्त आए। चलो, अब अपने आँसू पोंछो।"

बेंच (आँसू पोंछते हुए) — "हाँ भैया, सही कहा आपने।"

ब्लैकबोर्ड — "तो फिर? आगे क्या?"

बेंच — "भैया, वो बच्चे कब से वापस आएँगे?"

ब्लैकबोर्ड — "चिंता मत करो, बच्चों की छुट्टियाँ कुछ दिनों बाद ख़त्म होने वाली हैं। तब तक जब भी अकेला महसूस करो, बस मुझे एक आवाज़ देना। आख़िर मैं भी तुम्हारा भाई हूँ।"

बेंच की आँखें अभी भी हल्की-हल्की गीली थीं, लेकिन उसके चेहरे पर एक मुस्कान थी, और उसके अंदर चल रही जंग शायद अब ख़त्म हो चुकी थी।

# २१- गाँव की दहलीज़

यूँ तो मुझे हिन्दी में चुंगी कहते हैं और अंग्रेज़ी में बैरियर। लेकिन लोगों को चुंगी बोलने में थोड़ा कुछ कमतर लगता था और अंग्रेज़ी के शब्द उनके दाँतों में फँसते थे। इसलिए लोगों की अंग्रेज़ी में तंग और लड़खड़ाती हुई जबानों की वजह से मेरा नाम मुक़र्रर हुआ — बैरियल।

मैं एक छोटे से क़स्बे को जाने वाली सड़क पर, उस क़स्बे से तक़रीबन ३ किलोमीटर पहले पड़ने वाले एक लोहे के पुल — जो कि उस क़स्बे को पास के बड़े शहर से जोड़ता है — पर पिछले तक़रीबन ५६ सालों से बदस्तूर लोगों की आँखों की चमक और नमी का कारण बना हुआ हूँ। और ऐसा क्यों है, इसका कारण जानने के लिए आपको सुननी पड़ेगी मेरी दास्तान।

किसी मोटे, लंबे, सफ़ेद और चमकदार पेड़ के बेलनाकार तने को काटकर बनाया गया है मुझे। मेरे एक सिरे में रस्सी बंधी हुई है तो दूसरे सिरे में एक सुराख़ करके उसमें एक लोहे की छड़ फँसाकर, उस छड़ को दो मज़बूत लोहे के खंभों पर टाँग दिया गया है मुझे। और उसी सिरे पर जिसमें सुराख़ है, उस पर कुछ भारी-भरकम पत्थर बाँध दिए गए हैं जिसकी वजह से मेरा वो सिरा ज़मीन को चूमता है, और दूसरा सिरा जिसमें रस्सी बंधी हुई है वो हवा में आसमान से बातें करता है। रस्सी इतनी लंबी है कि मेरे हवा में

होने के बावजूद भी कोई अभी अदना-सा आदमी आकर उस रस्सी को न केवल पकड़ सकता है बल्कि मेरे उस सिरे को, जो आसमान से बातें करता है, उसे अपने पास नीचे ला सकता है। ये तो हुआ मेरे हुस्न और क़द-काठी का हिसाब-किताब।

उस पुल से क़स्बे की ओर जाने वाली और पुल से बड़े शहर की तरफ़ जाने वाली लगभग हर बस, गाड़ी, ट्रक, ट्रैक्टर को फूटी आँख नहीं सुहाता हूँ मैं। क्योंकि जब भी कोई बस या गाड़ी उस पुल से गुजरती है, तब मैं उनका रास्ता रोककर खड़ा रहता हूँ। और इस वजह से उनके मालिकों को पुल पार करने के बदले में एक छोटी-सी रक़म देनी पड़ती है। और इस रक़म के मिलते ही मुझमें बंधी रस्सी को ढीला कर दिया जाता है जिससे मेरा अगला सिरा कुछ देर के लिए हवा में आसमान से बातें करता है और रास्ता पाकर वाहन अपनी मंज़िल की ओर निकल जाता है।

उस पुल और उस क़स्बे के बीच कुछ ३० एक गाँव हैं। इन गाँव के लोगों को पास के बड़े शहर जाने या कहीं और जाने का इकलौता रास्ता है ये सड़क। कोई अपने रिश्तेदारों के यहाँ जाता है, कोई बड़े शहर में रोज़ाना नौकरी या काम करने के लिए, कभी किसी की बारात आती है तो कभी किसी की डोली निकलती है। कभी कोई बेटी या बहू अपने मायके आती या जाती है, तो कभी कोई अपने ससुराल। कोई कभी किसी मरीज़ को अस्पताल लेकर जाता है, तो कभी किसी नेता का क़ाफ़िला वहाँ से गुजरता है। और जितने अलग-अलग रूप इस पुल तक आने वाले लोगों के हैं, उतनी ही उनकी भावनाएँ।

जब भी कोई बेटी ब्याह कर अपने ससुराल जा रही होती है या कोई बेटा पढ़ाई करने या नौकरी करने के लिए किसी बड़े शहर में जाता है, तो जैसे ही उनकी बस पुल पार कर रही होती है और जैसे ही उनकी नज़र मुझ पर पड़ती है, उनके लाख न चाहने के बावजूद भी उनकी आँखें नम हो जाती हैं। उनकी उन नम आँखों में उनकी माँ और बाप का प्यार-दुलार, घर-आँगन, भाई-बहन, सहेलियाँ-दोस्त, खेत-खलियान और भविष्य की अनिश्चितताओं में बुनी हुई एक तस्वीर दिखाई देती है। ये तस्वीर और उसमें छुपी वेदना कुछ उन चीज़ों में हैं जिन्हें मैं बिलकुल पसंद नहीं करता। अगर मेरा बस चले तो मैं कभी भी गाँव के किसी बेटे या बेटी को अपने से आगे न जाने दूँ।

और दूसरी तरफ़, जब कोई बेटी अपनी ससुराल से मायके में आ रही होती है या जब कोई दूसरे शहर में पढ़ाई या नौकरी करने वाला लड़का या लड़की छुट्टियों में अपने घर आ रहा होता है, और जैसे ही उसकी नज़र मुझ पर पड़ती है — उनके होठों पर एक मुस्कान-सी दौड़ जाती है। उनकी आँखों में चमक-सी आ जाती है, उनका शरीर माँ के आँचल की गर्मी को महसूस करने लगता है, उनकी नाक घर में बने खाने की ख़ुशबू से भर जाती है, उनके क़दम ख़ुद-ब-ख़ुद घर के आँगन और गाँव की गलियों में दौड़ने को बेताब होने लगते हैं। और यक़ीन मानिए जनाब, यही वो पल हैं जिनकी वजह से मैं पिछले ५६ साल से यहाँ पड़ा हुआ हूँ।

पास के शहर में रोज़ बस में बैठकर काम की तलाश में जाने वाले लोग जब शाम को वापस आते हैं, आते समय इन लोगों की नज़र जैसे ही मुझ पर पड़ती है, तो ये अपनी सीट छोड़कर बस के दरवाज़े पर आ खड़े होते हैं। मैं इनके लिए इनके गाँव की दहलीज़ से कम नहीं हूँ। उनकी आँखों में

घर पहुँचकर बच्चों के साथ खेलने की तमन्ना, परिवार के साथ बैठकर एक वक़्त खाना साथ खाने की उम्मीद की तस्वीर मेरे दिल को सुकून देती है।

*ये तस्वीर और उसमें छुपी वेदना कुछ उन चीज़ों में हैं जिन्हें मैं बिलकुल पसंद नहीं करता। अगर मेरा बस चले तो मैं कभी भी गाँव के किसी बेटे या बेटी को अपने से आगे न जाने दूँ।*

लेकिन इन सबसे अलहदा और मेरे दिल के सबसे क़रीब तस्वीर है — वो तस्वीर जो उन बच्चों की आँखों में दिखती है जिनका ननिहाल इन गाँवों में होता है। जब भी वो बच्चे अपने ननिहाल आ रहे होते हैं और जैसे ही उनकी नज़र मुझ पर पड़ती है, तो उनका चेहरा इस क़दर खिल उठता है — जैसे किसी बहुत दिनों से भटके हुए राहगीर को अपना ठिकाना मिल गया हो। ये बच्चे मुझे दूर से देखते ही अपनी माँ के आँचल को बार-बार खींचने लगते हैं, और ज़ोर-ज़ोर से शोर मचाने लगते हैं कि "नानी घर आ गया, नानी घर आ गया!"

और बस इन्हीं कुछ चुनिंदा तस्वीरों के बल पर कट रही है मेरी ज़िंदगी।

# २२-दस्तक

जैसे ही बब्बू दरवाज़े के पास आकर खड़ा हुआ, उसने दरवाजा पीटना शुरू कर दिया।

दरवाज़े के लिए यह आम हो चुका था, जब भी कोई मेहमान घर पर दस्तक देता तो वह सबसे पहले दरवाज़े को कुछ यूँ पीटता जैसे कोई लौहार गर्म लोहे पर हथौड़ा चला रहा हो। और दरवाज़े का जिस्म भी लोहे की साँकल से चोट खा खाकर इतनी सख़्त जान बन गया था कि इतना सब होने के बाद भी वह किसी फ़िल्मी हीरो की तरह मार खाता रहता लेकिन उफ़ तक न करता।

इतने में साँकल फुसफुसाई

साँकल: "तुम्हें दर्द नहीं होता क्या ?"

दरवाज़ा ( मुस्कुराते हुए) : "दर्द ! किस बात का ! और वो क्या बला है।"

साँकल: "बनो मत मुझे सब पता है। जिस तरह मेरे भारी भरकम लोहे की देह को तुम्हारे जिस्म पर जिस बेदर्दी से पटका जाता है, उस वक्त तुम पर क्या गुजरती है, उसका मुझे पूरी तरह से अंदाजा है।"

दरवाजा: "अरे मेरी जान ! मैं तो इन पलों का इंतज़ार करता हूँ कि कब कोई मेहमान आये और दस्तक दे, क्योंकि यही तो वे पल हैं जब मेरा

जिस्म तुम्हारे स्पर्श को महसूस करता हूँ, थोड़ी देर के लिए ही सही बेफ़िक्र होकर तुम्हें अपने सीने से लगा पाता हूँ।"

साँकल ( थोड़ा मुस्कुराकर) : "अच्छा! तो ये बात है।"

दरवाज़ा ( धीरे से ): "तुम्हें एक और राज की बात बताता हूँ। पता है इस घर में जब भी कोई मेहमान आता है और मुझ पर दस्तक देता है उस वक्त मैं मन ही मन भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि इस घर का मेज़बान मुझे खोलने आने के लिए ज़्यादा से ज़्यादा देर लगाये, ताकि तुम्हारे और मेरे मिलन के ये सुखद क्षण ज़्यादा से ज़्यादा देर तक रहें, मैं ज़्यादा से ज़्यादा देर तक तुम्हारे आलिंगन के सागर में गोते लगा पाऊँ, ज़्यादा से ज़्यादा देर तक तुमको अपने क़रीब पाऊँ, ज़्यादा से ज़्यादा देर तक तुम्हारे स्पर्श को अपने हृदय की गहराइयों तक ले जाऊँ।"

साँकल ( खिलखिलाते हुए ): "धत !!! तुम बहुत स्वार्थी हो और बेहद ही बेशर्म भी।"

दरवाजा: "क्यूँ !!"

साँकल: "वो ऐसे क्योंकि जब तुम ये सोचते हो कि मेहमान के दस्तक देने के बाद मेज़बान देर से आये ताकि तुम अपने सुखद और आनंददायक, प्रेम के रस से भरे इन क्षणों का लुत्फ़ ज़्यादा देर तक उठा पाओ। पता है, तब तुम जाने अनजाने उस मेहमान की परेशानियों को बढ़ा रहे होते हो। क्योंकि पता नही वह मेहमान कितनी दूर से आ रहा है, कब से चल रहा हो, उसने कुछ खाया है कि नही, वह किसी मदद के लिए तो नहीं आया, किसी परेशानी में तो नहीं है, उसे कोई जल्दी तो नहीं है। और तुम इन

सब की परवाह किए बिना केवल तुम्हें अपना प्रेम और आनंद नज़र आता है। इसलिए तुम हुए ना स्वार्थी।"

दरवाज़ा: "और बेशर्म क्यों ?"

साँकल (चुटकी लेते हुए): "तुम्हारी इन मीठी मीठी प्रेम भरी बातों से जिनमें कभी कभी मुझे हवस नज़र आती है।"

दरवाज़ा ( थोड़ा सा गुस्सा होते हुए): "अच्छा अब तुम मेरे प्यार को हवस का नाम दे रही हो । जरा एक बार अपनी आँखों से मेरे जिस्म को गौर से देखो, जितनी दफ़ा मैं तुमसे मिला हूँ हर दफ़ा तुमसे उस मिलन के लिए मैंने भारी कीमत चुकाई है, मेरे जिस्म पर पड़े ये घाव तुमसे मिलन की निशानी भर नही, बल्कि मेरे प्यार की गवाही है"

*जितनी दफ़ा मैं तुमसे मिला हूँ हर दफ़ा तुमसे उस मिलन के लिए मैंने भारी कीमत चुकाई है, मेरे जिस्म पर पड़े ये घाव तुमसे मिलन की निशानी भर नही, बल्कि मेरे प्यार की गवाही है"*

साँकल ( शर्माते हुए ): "अरे बाबा ! मान गई, तुम मेरे सच्चे आशिक़ हो। अच्छा चलो अब ये बताओ कि तुम्हारा सबसे बड़ा दुश्मन कौन है"

दरवाज़ा: "जो चौखट में कुंडा लगा है वह।"

साँकल (चौंकते हुए ): " कुंडा !! क्यों उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

दरवाज़ा: “क्योंकि इस संसार में केवल एक तुम ही तो हो जिसने मेरा साथ चुना है, मेरे अकेलेपनपन को दूर किया है, मेरे हृदय को शीतलता दी है, मुझसे प्रेम किया है। और मुझे अपने जीवन का वह एक भी क्षण पसंद नही जिसमें तुम मेरे साथ न हो। लेकिन चौखट में लगे इस कुंडे की वजह से मुझे तुमसे कई कई दिनों तक दूर रहना पड़ता है। इसलिए इस कुंडे से मुझे नफ़रत है, मेरा सबसे बड़ा दुश्मन है।”

साँकल: “तुम खामख्वाह ही उस बेचारे को अपना दुश्मन समझ रहे हो। इसमें कुंडे की कोई गलती नही है। कुंडा तो घर के मालिक की मर्जी से चलता है। जब भी वो बाहर जाता है तब तुम्हारे दोनों फाटकों को बंद करके मुझे उस कुंडे पर चढ़ाकर ताला लगा देता है।”

दरवाज़ा: “मुझे ये सब नही पता ! बस मुझे इतना पता है कि इस कुंडे की साज़िशों की वजह से ही मेरे और तुम्हारे बीच में दूरियां आ जाती हैं। तुम भी इससे दूर रहा करो।”

साँकल: “ठीक है बाबा, अबसे उससे दूर ही रहूँगी। लेकिन मैं भी तुम्हें एक बात बताऊँ, नाराज़ तो नहीं होगे ?”

दरवाज़ा: “ नहीं नाराज होऊँगा, बोलो”

साँकल ( हँसते हुए ): “जब भी मैं कुंडे के साथ होती हूँ न, तो वह भी वही बातें करता जो तुम करते हो। और वह भी तुम्हें अपना सबसे बड़ा दुश्मन मानता है। हाहाहा।”

....और भौहें चढ़ाकर दरवाज़ा ग़ुस्से मैं भड़भड़ाने लगता है।

# २३- चुड़ैल

घर की पहली मंजिल पर एक कमरा है, पहले यह सेठ जी का कमरा हुआ करता था। लेकिन उनके गुजरने के बाद अब इस कमरे में घर का कुछ पुराना सामान और कबाड़ रखा जाता है। इस कमरे में घुसते ही बाईं ओर की दीवार पर एक टांड बना हुआ है। उसी सुनसान टांड के घुप अंधेरे में एक सूप अपने आख़िरी दिन गिन रहा है।

एक दिन घुप सन्नाटे के बीच उसे कुछ हलचल सुनाई देती है—

किशोरी – "अजी सुनते हो! ज़रा बाज़ार जाने से पहले, टांड पर से सूप उतार कर नीचे रख जाना।"

किशोरी की आवाज़ सुनते ही सूप तिलमिला जाता है और वह ख़ुद से ही कुछ बड़बड़ाने लगता है...

"लगता है या तो दीपावली आ गई है या आज घर में किसी की शादी है। तभी इन लोगों को आज मेरी याद आ गई है। वरना पिछले एक साल से दीमक, धूल और जालों से भरी इन दीवारों के बीच अकेला पड़ा हुआ हूँ, लेकिन कोई मेरी सुध लेने तक नहीं आया।"

किशोरी की आवाज़ सुनते ही सूप का तिलमिलाना जायज़ था, और ऐसा हो भी क्यों न। वह किशोरी ही थी जिसकी हरकतों के कारण सूप को ये

दिन देखने पड़ रहे थे। दरअसल, हुआ कुछ यूँ कि सेठ जी के गुजरने और सेठानी के बिस्तर पकड़ लेने के बाद घर की कमान पूरी तरह से घर की नई बहू किशोरी के हाथ में आ गई थी, और सूप के इन हालातों की ज़िम्मेदार भी किशोरी ही थी।

बहरहाल, सूप का बड़बड़ाना अभी थमा नहीं था—

"जब से इस चुड़ैल का घर पर कब्ज़ा हुआ है तब से इस घर का हर आदमी कुछ ज़्यादा ही मतलबी हो गया है। ये लोग मुझे तभी याद करते हैं जब इन्हें कोई काम पड़ता है। शायद अब इन लोगों की ज़िंदगी में मेरी कोई अहमियत नहीं है, इसलिए इन लोगों ने मुझे ख़ुद से दूर इस टांड पर फेंक दिया है। यहाँ तो कोई बातचीत करने वाला भी नहीं है, जिससे मैं अपना सुख-दुख साझा कर लूँ, या दो बातें कर के अपना मन बहला लूँ।

अगर सेठानी बीमार न हुई होती तो शायद मुझे ये दिन न देखने पड़ते। सेठ और सेठानी की तो बात ही कुछ और थी। सेठानी मुझे हमेशा आँगन की दीवार में लगी हुई एक खूंटी पर टांग कर रखती थी। क्योंकि सेठानी को घर के पिसे हुए आटे की रोटी पसंद है, इसलिए वो महीने में मुझे हर २-३ बार खूंटी से नीचे उतारती और मुझे साफ़-सुथरा कर के गेहूँ का फटकने के बाद फिर से साफ़-सुथरा कर के दोबारा खूंटी पर टांग देती थी। सेठानी के बीमार होने से पहले भी कई बार इस चुड़ैल ने मुझे खूंटी से उतारकर टांड पर फेंका था, लेकिन भला हो सेठानी का, जिनके सामने इस चुड़ैल की एक न चलती। कई बार इस वजह से इन दोनों में काफ़ी नोकझोंक भी हो चुकी थी।

पता नहीं सेठ जी भी मुझे अपने साथ क्यों नहीं ले गए। कितने अरमानों से सेठ जी ने मुझे पास के गाँव में लगने वाले तीज के मेले से ख़रीदा था। पूरे १५ मिनट तक बीसियों सूप को ढेर में से बारी-बारी से उठाकर, उन्हें देखने-परखने के बाद सेठ जी ने मुझे चुना था। पता नहीं ऐसा क्या दिख गया था सेठ जी को मुझ में। मुझे अच्छी तरह से वो पल याद है जब सेठ जी अपने चेहरे पर एक विजय और अपनत्व की मुस्कान लिए मुझे बस एकटक देखे जा रहे थे। और फिर सेठ जी ने मुझे कुछ यूँ अपने गले से लगा लिया जैसे उनका कोई बिछड़ा हुआ पुराना साथी मिल गया हो।

घर जाते समय मैं सेठ जी की साइकिल के केरियर पर बैठा था, और मेले से घर तक की साइकिल यात्रा के दौरान हम दोनों कुछ यूँ मालूम हो रहे थे जैसे लंगोटिया यार हों।

घर पहुँचते ही सेठ जी ने आवाज़ लगाई— “अरे ओ भागवान, ज़रा बाहर तो आओ। देखो तुम्हारे लिए मैं मेले से क्या लेकर आया हूँ।”

इतने में अंदर से सेठानी दौड़ी आईं, और आते ही बिना कुछ बोले ही उन्होंने दौड़कर मुझे सेठ जी के हाथों से छीन लिया।

लेकिन सेठानी की ये हरकत मुझे कुछ ज़्यादा पसंद नहीं आई, क्योंकि मुझे तो अपने दोस्त यानी सेठ जी के साथ समय बिताना था, उनसे ढेर सारी बातें करनी थीं।

ख़ैर, सेठानी ने तुरंत ही पूजा की थाली में से थोड़ी सी रोली और चावल लेकर मेरा तिलक कर दिया। ये सब देख मैं मन ही मन खुश भी हो रहा था, लेकिन अंदर ही अंदर मैं सेठानी से जल भी रहा था।

खुशी इस बात की थी कि सेठानी ने मेरा टीका-चंदन कर के स्वागत किया। लेकिन सेठ और सेठानी के बीच के प्यार को देखकर मुझे उनसे जलन भी हो रही थी।

*ये लोग मुझे तभी याद करते हैं जब इन्हें कोई काम पड़ता है। शायद अब इन लोगों की ज़िंदगी में मेरी कोई अहमियत नहीं है, इसलिए इन लोगों ने मुझे ख़ुद से दूर इस टांड पर फेंक दिया है।*

ख़ैर, सेठानी मुझे बड़े प्यार-दुलार से रखती थीं और मैंने भी किस्मत को स्वीकार कर सेठानी को अपना दोस्त बना लिया। सेठानी रोज़ गेहूँ साफ़ करने के बाद मुझे साफ़-सुथरा कर के घर के आँगन में एक खूंटी पर टांग देती थीं। लेकिन मैं भी बड़ा ढीठ था — खूंटी पर टंगे होने पर भी मेरी आँखों में बस सेठ जी का इंतज़ार रहता था कि कब सेठ जी आएँ और मेरे साथ हँसी-ठिठोली करें।

मुझे आज भी सेठानी के साथ बिताए वो पल याद हैं जब वह गेहूँ साफ़ करते समय धीमी लेकिन मधुर आवाज़ में गीत गुनगुनाती थीं। कभी-कभी सेठ जी भी शौक-शौक में मुझे अपने हाथों में लेकर गेहूँ फटकारने लगते थे।

शादी और त्योहारों पर तो सेठानी मुझे दूल्हे की तरह सजाती थीं। सजे-सँवरे दूल्हे की तरह जब मुझे सेठानी पूजा के लिए गाँव के मंदिर ले जाती थीं — तब मेरी खूबसूरती क्या ही कहने! बाकी के सूप...

लेकिन तभी अचानक टांड का पर्दा खुलता है, और सामने किशोरी का पति सूप लेने के लिए खड़ा होता है — और इस तरह सूप की इस मानसिक यात्रा का अंत होता है।

# २४-साज़िश

गली नंबर ६ के कोने वाले मकान में घर की बूढ़ी मालकिन पहली मंज़िल पर अकेली रहती हैं। उनका नाम तो वैसे आशा था लेकिन प्यार से सभी उन्हें आशा ताई कहते थे। वैसे तो आशा ताई का भरा-पूरा परिवार है, लेकिन दोनों बेटियों की शादी हो चुकी है। बीवी-बच्चों को लेकर बेटा विदेश में नौकरी करने चला गया है और उनके पति कई बरस पहले उनका साथ छोड़ चुके हैं। आए दिन आशा ताई को अकेलेपन से दो-चार होना पड़ता है, इसलिए आशा ताई अपने अकेलेपन को चकमा देने के लिए अपना ज़्यादातर समय उस सड़क के किनारे वाले कमरे में खिड़की के पास रखी एक कुर्सी पर बैठकर बिताती हैं। क्योंकि सड़क पर आते-जाते लोग, सड़क पर लगी हुई दुकानें, उन पर मोलभाव करते लोग, सड़क पर होने वाले झगड़े और अजीबो-गरीब हरकतें, वाकये—उनसे उनका अकेलापन छीन लेती हैं।

बहरहाल, जनवरी का पहला हफ़्ता चल रहा है। ठंड का सितम ज़ोरों पर है। इसी दरमियान एक साज़िश गढ़ी जा रही है, जिसके अहम किरदार हैं—घर की पहली मंज़िल वाली खिड़की (जो बिल्कुल सड़क किनारे है), सूरज और धुँध। इस साज़िश की बुनियाद बीती गर्मियों में ही पड़ चुकी है।

बीती गर्मियों में हुआ कुछ यूँ कि आदतन आशा ताई खिड़की के पास बैठकर घंटों यूँ ही गुज़ार दिया करती थीं। सड़क के उन नज़ारों में पता नहीं ऐसा क्या था जो आशा ताई को कुर्सी से चिपकाकर रखता था। बहरहाल, खिड़की भी धीरे-धीरे ताई की सोहबत की आदी हो चुकी थी। और ये आदत उस पर इस क़दर हावी हुई कि वो गलतफ़हमियों का शिकार होने लगी। उसे लगने लगा कि आशा ताई घंटों उसके पास इसलिए बैठी रहती हैं क्योंकि उन्हें उसके (खिड़की) के साथ समय बिताना पसंद है। उसने मन ही मन मान लिया कि आशा ताई और वो अब अच्छी दोस्त बन चुकी हैं। खिड़की यहाँ उस बात को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर देती है कि आशा ताई खिड़की पर उसके कारण नहीं बल्कि अपने अकेलेपन को भुलाने के लिये बैठती हैं।

और इसी दोस्ती की वजह से खिड़की ने दुनिया भर से दुश्मनी मोल ले रखी थी। और दुश्मनों की इस फ़ेहरिस्त में सूरज का नाम अव्वल था। ऐसा इसलिए क्योंकि गर्मियों में सूरज की किरणों के कारण वह कमरा बहुत ज़्यादा गर्म हो जाता था, जिससे उस कमरे में कोई ज़्यादा देर तक टिक नहीं सकता था। इस वजह से गर्मियों में आशा ताई ज़्यादातर समय उस कमरे में न बिताकर अंदर वाले कमरे में बिताने लगीं। और इस वजह से ताई और खिड़की के बीच दूरियाँ पनपने लगीं। और ये दूरियाँ ही खिड़की को नागवार थीं, जो आगे चलकर सूरज और खिड़की के बीच एक नफ़रती दीवार बन गईं खिड़की ने अपनी इन तन्हाइयों का पूरा दोष सूरज के माथे मढ़ दिया। और इसका अंजाम ये रहा कि खिड़की आए दिन सूरज को भला-बुरा कहकर अपना ग़ुस्सा निकालती थी। और इंतिहा तो उस दिन हो गई जब खिड़की ने झल्लाकर सूरज से कहा—

“तेरी इस गर्मी के कारण ही तू हमेशा अकेला भटकता रहता है। तू क्या समझेगा किसी से बिछड़ने का दर्द?”

खिड़की की बात सुनकर सूरज को पहले पल तो ग़ुस्सा आया और अगले ही पल उसकी आँखें नम हो गईं। ख़ैर, उस वक़्त उसने अपनी ज़ुबान से एक भी लफ़्ज़ खिड़की के लिये नहीं निकाला। लेकिन खिड़की के मुँह से निकले ये शब्द सूरज के दिल-दिमाग़ पर गहरे ज़ख़्म छोड़ गए थे।

धीरे-धीरे वक़्त बीता, और अब सर्दियाँ आ चुकी हैं। खिड़की के मुँह से निकले हुए अल्फ़ाज़ जो सूरज के दिल में अब भी नश्तर बनकर चुभ रहे हैं, आज भी उसके ज़ेहन में ताज़ा हैं। सूरज ने खिड़की से बदला लेने का मन बना लिया है। और बदले की यह आग ही उस साज़िश का आग़ाज़ है।

साज़िश के तहत सूरज ने अपने पत्ते बिछाने शुरू कर दिए हैं। सबसे पहले उसने धुँध की तरफ़ दोस्ती का हाथ बढ़ाया है। वैसे तो सूरज और धुँध एक-दूसरे को फूटी आँख नहीं सुहाते हैं, लेकिन जब सूरज ने अपने और खिड़की के बीच का क़िस्सा धुँध को सुनाया, तो धुँध का दिल भी पसीज गया।

धुँध ने कहा—

“वैसे तो मेरा तुम्हारा छत्तीस का आँकड़ा है, तुम्हारी ये रोशनी हमेशा इस फ़िज़ा में मेरी मौजूदगी को चुनौती देती है। लेकिन खिड़की ने जो कुछ भी तुमसे कहा, वो नाक़ाबिले बर्दाश्त है। लेकिन एक बात बताऊँ, इन सब में गलती खिड़की की भी नहीं है, हालातों की है। ये सब उस नासमझ पगली ने उस बूढ़ी औरत की दोस्ती के ख़ातिर किया है, जो शायद

खिड़की को अपना दोस्त तक नहीं मानती। ख़ैर, फिर भी उसने तुम्हारे दिल को जो चोट पहुँचाई है, उसके लिए उसे सबक़ तो सिखाना ही पड़ेगा।"

सूरज और धुँध दोनों ने मिलकर खिड़की के ख़िलाफ़ जो साज़िश रची थी, उसका असर दिखने लगा है। धुँध ने जानबूझकर एक ख़तरनाक रूप अख़्तियार कर लिया है। पिछले दस दिन से धुँध ने सूरज को अपनी घनी चादर में समेट लिया है। फ़िज़ाओं में चारों तरफ़ केवल और केवल धुँध के निशान फैले पड़े हैं। अँधेरा अब घड़ी की सुइयों का मोहताज नहीं रहा है। सूरज की हालत एक बल्ब की तरह हो चुकी है—न तो अब उसकी किरणों में पहले जैसी रोशनी है और न ही गर्मी।

और इस सब का असर खिड़की तक पहुँचने लगा है। आशा ताई, जिन्होंने गर्मी जाने के बाद बारिश के मौसम में फिर से खिड़की के पास बैठना शुरू कर दिया था, फिर से परेशान हो रही हैं। क्योंकि धुँध की वजह से उस कमरे में सूरज की किरणें नहीं आ पा रही हैं। जिस वजह से कमरा और ज़्यादा ठंडा हो गया है, और आशा ताई को फिर खिड़की से दूरी बनानी पड़ गई है।

और ये नज़दीकियाँ और दूरियाँ ही इस खेल की शह और मात हैं।

खिड़की कई दिनों से मुँह लटकाए उदास बैठी है। क्योंकि पिछले कई दिनों से उसकी दोस्त आशा ताई उससे मिलने नहीं आई हैं। खिड़की मायूस होकर अंदर ही अंदर सिसक रही है। उसके अंदर की मायूसी ग़ुस्से में बदलने को बेताब हो रही है। और बाहर छाये धुँध के बादलों की तरफ़

देखकर खिड़की ने अपनी उस बेताबी का अल्फ़ाज़-ए-बयान कुछ यूँ किया—

“हो सकता है कि आज तेरा मेरे हालातों पर पूरा शिकंजा है। लेकिन धुँध, ये मत भूलना कि हर दिन एक जैसा नहीं होता है। देखती हूँ, तू कितने दिनों तक सूरज को अपने पास छुपाकर रखेगी। एक न एक दिन तो ऐसा आएगा जब तुझे जाना पड़ेगा। और तब तेरी कोई भी साज़िश सूरज को अपनी रोशनी और गर्मी फ़िज़ाओं में घोलने से रोक नहीं पाएगी।”

यहाँ खिड़की इस बात से अनजान है कि दरअसल ये नौबत केवल और केवल धुँध की वजह से नहीं, बल्कि सूरज और धुँध दोनों की मिली-जुली साज़िश का नतीजा है।

ख़ैर, ये सुन धुँध ने खिड़की से कहा—

“आज तो बड़ी हिमायतिन बन रही है तू सूरज की। लेकिन बीती गर्मियों में उसे जो भला-बुरा बोला करती थी, तब क्या तेरी अक़्ल पर पत्थर पड़ गए थे?” तू मतलबी और एहसान फ़रामोश है।

*फ़िज़ाओं में चारों तरफ़ केवल और केवल धुँध के निशान फैले पड़े हैं। अँधेरा अब घड़ी की सुइयों का मोहताज नहीं रहा है। सूरज की हालत एक बल्ब की तरह हो चुकी है—न तो अब उसकी किरणों में पहले जैसी रोशनी है और न ही गर्मी।*

ये सुनकर खिड़की अपने जज़्बातों को रोक नहीं पाई और सिसक-सिसक कर रोने लगी।

और बोली—

"दीदी, ये सब मैंने अपनी दोस्ती की ख़ातिर किया था।"

फिर धुँध बोली—

"पगली! तो सूरज भी तेरा दोस्त ही तो है। ये कौन सी बात हुई कि एक दोस्त को खुश रखने के लिए दूसरे दोस्त का दिल दुखाओ। माना कि गर्मियों में सूरज की तपिश तुम्हारी दोस्त को थोड़ा परेशान करती है, लेकिन ये भी तो सोचो, सर्दियों में वही तपिश उसे राहत भी तो देती है। हर दोस्त में कुछ न कुछ ख़ामियाँ होती हैं, लेकिन दोस्ती तभी सच्ची होती है जब आप उन ख़ामियों को नज़रअंदाज़ करते हैं।"

खिड़की – "दीदी, सही कहा आपने, आपने मेरी आँखों पर बंधी पट्टी खोल दी। मैंने सच में सूरज का दिल दुखाया है।"

धुँध – "चल, अब रोना छोड़। कल मैं चली जाऊँगी। तब सूरज आ जाएगा। और फिर मिल लेना अपनी उस बूढ़ी दोस्त से। लेकिन अब से सूरज को अपना दोस्त मानना, और गर्मियों में उसे कभी भला-बुरा मत कहना।"

खिड़की – "जी दीदी, धन्यवाद।"

और ये सुनकर सूरज और धुँध दोनों मुस्कुरा उठे।

# २५- जादूगरनी

मुन्नी और राजू के ब्याह को तीन साल बीत चुके थे। उन दोनों की जोड़ी बिल्कुल राम-सीता की जोड़ी थी। उस समय तक राजू कोई २६ साल का, लंबा-चौड़ा, गठीले शरीर का बाँका जवान था, तो वहीं मुन्नी भी २२ साल की तीखे नैन-नक्श वाली सुंदर युवती थी। उसकी बड़ी-बड़ी भूरी आँखें और लंबे, काले, घने बाल उसकी सुंदरता में चार चाँद लगाते थे।

यूँ तो मुन्नी को प्रकृति ने ही सुंदरता का वरदान दिया था, लेकिन फिर भी मुन्नी को शृंगार करने का बहुत शौक़ था। नहाने के बाद उसे शृंगार करने में कम से कम एक घंटा लग जाता था। और उसके इसी शौक़ के कारण उसकी राजू की माँ के साथ आए दिन बहस होती रहती थी। मुन्नी के पास एक शृंगारदानी थी, जो उसे राजू ने उनकी शादी की पहली सालगिरह पर तोहफ़े के तौर पर दी थी। उस शृंगारदानी में अलग-अलग रंगों और अलग-अलग आकार की बिंदियाँ, लाली, काजल की डिब्बी, सुरमेदानी, सिंदूर की डिब्बी, कई रंगों की नाख़ूनी, महावर की पुड़िया और न जाने क्या-क्या था।

यूँ तो शृंगारदानी में रखा हर एक सुहाग का सामान खुद को एक से बढ़कर एक समझता था। हर किसी को लगता था कि केवल उसी की वजह से मुन्नी इतनी सुंदर दिखती है और उसके बिना मुन्नी का शृंगार अधूरा है।

लेकिन इन सब में सिंदूर की डिब्बी की एक अलग ही दुनिया थी, उसकी दलील रहती थी कि उसके पास जादुई शक्तियाँ हैं, और वह खुद को जादूगरनी समझती है, इसलिए वह शृंगारदानी में मौजूद बाकी सुहाग के सामान से अलग है।

और आए दिन शृंगारदानी में रखे अलग-अलग सुहाग के सामान के बीच खुद को अव्वल साबित करने की होड़ सी लगी रहती थी।

एक दिन की बात है, हमेशा की तरह शृंगारदानी में मौजूद सामानों के बीच अचानक से बातूनी जंग छिड़ गई। हर कोई अपनी-अपनी तारीफ़ों के कसीदे गढ़ने में मशगूल था। कोई भी चुप होने को तैयार नहीं था। एक की बात पूरी हो नहीं पाती थी, दूसरा उसकी बात काटने को तैयार रहता था।

उस दिन का घटनाक्रम कुछ यूँ था:

अचानक से काजल की डिब्बी उछलकर बोली, "ये जो मुन्नी की भूरी आँखों की सुंदरता है न, उसके पीछे मेरा ही हाथ है। मेरी ही कालिख का कालापन उसकी आँखों के क़ातिलाना पन का ज़िम्मेदार है।"

इतने में सुरमेदानी तुनककर काजल को टोकती है, "बड़ी आई कालापन और क़ातिलाना पन! ये जो तुम सब मुन्नी की आँखों का कँटीलापन देख रहे हो, मेरी ही सलाई से उतरे सुरमे का ही नतीजा है। अगर मैं न हूँ, तो मुन्नी के ये तीखे नैन-नक्श किसी काम के नहीं।"

इतने में बिंदी इतराकर बोलती है, "अजी छोड़ो तुम सब, कितना भी काजल पोत लो, सुरमा लगा लो, चाहे कितनी भी लाली थोप लो, लेकिन

इस बात से तुम सब भी इनकार नहीं करोगे कि जिस दिन मुन्नी मुझे अपने माथे पर लगाना भूल जाती है, उस दिन राजू मुन्नी को तुरंत टोक देता है और फिर अपने हाथ से मुझे उसके माथे पर चिपका देता है।"

सिंदूरदानी बहुत देर से शांत बैठी थी, और सबकी बातें सुने जा रही थी। खैर, बाकी लोगों की बातें सुनकर बीच-बीच में उसे हँसी भी आ रही थी, इसलिए वह अपने होंठों को मुँह के बीच दबाकर बैठी थी।

जैसे ही सिंदूरदानी की बारी आती है, सब शांत हो जाते हैं और उसकी ओर देखने लगते हैं।

सिंदूरदानी कहती है, "मुझे डिब्बी में रखी केवल लाल रंग की धूल समझने की गलती मत कर बैठना। मैं जादूगरनी हूँ... जादूगरनी। और जितनी ख़ास मैं हूँ, उतना ही ख़ास मेरा जादू का पिटारा है। और जादू भी ऐसे-ऐसे, जो इस दुनिया में शायद ही किसी और के वश की बात हो।"

इतने में सुरमेदानी बीच में टोकती है, "अच्छा! तू बड़ी आई जादूगरनी बनने! बता तो सही, कौन-कौन से जादू आते हैं तुझे?"

सिंदूर की डिब्बी: "अगर मेरी तारीफ़ें सुनने का इतना ही शौक़ है तो सुनो—

अगर कोई पुरुष मुझे अपनी चुटकी से किसी स्त्री के सिर पर सजा दे,

तो वह स्त्री और पुरुष ताउम्र एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ते।

और एक जादू तो ऐसा है कि अगर कोई स्त्री मुझे अपने माथे के ऊपरी हिस्से पर प्रतिदिन लगाए,

तो मैं उसके पति की उम्र तक बढ़ा सकती हूँ।

अब मैं अपनी क्या ही तारीफ़ करूँ, तुम तो बस ये कविता सुनो:

न मानो तो धूल भर हूँ,

मानो तो प्रेम की निशानी।

न मानो तो सिर्फ़ लाल रंग,

मानो तो सुहाग की निशानी।"

बाक़ी के सुहाग का सामान सिंदूर की डिब्बी की बातें आँखें फाड़-फाड़कर सुनते रहते हैं और उसके आगे कुछ नहीं बोल पाते हैं।

दरअसल, सिंदूर की डिब्बी को लगता था कि शादी वाले दिन अगर राजू, मुन्नी की माँग में सिंदूर न भरता, तो राजू और मुन्नी कभी एक साथ नहीं रह पाते। और उसे ये भी लगता है कि जब तक मुन्नी रोज़ अपनी माँग में सिंदूर सजाती रहेगी, तब तक राजू का बाल भी बाँका नहीं हो सकता।

खैर, एक सुबह की बात है। जाड़े के दिन थे, सुबह से ही ठंडी हवा चल रही थी, कोहरे की वजह से दोपहर में ही छुटपुट अंधेरा सा हो चुका था। घर के पीछे वाले बाड़े में बंधी भैंस बहुत देर से चिल्ला रही थी और चुप होने का नाम नहीं ले रही थी।

मुन्नी – "अजी सुनते हो, बहरे हो गए हो क्या? इनको चारा-पानी दे दो, चिल्ला-चिल्ला कर इन्होंने आसमान सर पर उठा लिया है।"

पास में ही जल रही आग के पास राजू अलसाया हुआ सा बैठा था। मुन्नी की आवाज़ सुनकर झल्लाकर बोला –

“दे तो दिया था इन्हें चारा, और कितनी बार दूँ?”

मुन्नी – “फिर ये चिल्ला क्यों रही हैं? एक बार जाकर तो देखो, क्या हुआ?”

राजू धीमे से बोला – “अरे जा रहा हूँ।”

और फिर राजू बड़बड़ाता हुआ अनमने ढंग से घर के पीछे वाले बाड़े में चला गया।

रात होने को थी, चारों तरफ़ घुप अंधेरा छा गया था। राजू को गए हुए काफ़ी देर हो चुकी थी। भैंसों ने भी चिल्लाना बंद कर दिया था, लेकिन अभी तक राजू वापस नहीं आया था।

जब मुन्नी घर का चौका-चूल्हा करके बाहर आई तो देखा, बाहर आग अभी भी जल रही है, लेकिन आग के पास से राजू गायब है।

मुन्नी को राजू की चिंता सताने लगी। वह हाथ में लालटेन लिए पीछे वाले बाड़े की तरफ़ जाने लगी।

जैसे ही मुन्नी वहाँ पहुँची, और वहाँ जाकर उसने जो देखा, उसे देखते ही उसके हाथ से लालटेन छूट गई और कुछ देर तक उसके हलक़ से आवाज़ आनी बंद हो गई।

उसके सामने राजू ज़मीन पर पड़ा हुआ था और उसके मुँह से झाग निकल रहे थे। उसका पूरा शरीर नीला पड़ गया था और मुन्नी को समझ आ चुका था कि राजू अब कभी वापस नहीं आएगा।

मुन्नी बाड़े में ही बैठकर रोने लगी, चीख-पुकार मचाने लगी। उसकी आवाज़ सुनकर आसपास के लोग दौड़े आए। राजू की लाश को उठाकर घर के आँगन में रख दिया गया था। पूरी रात मुन्नी के आँसू एक पल के लिए भी नहीं रुके। मुन्नी की चीत्कार से पूरा गाँव गूँज रहा था। जैसे-तैसे उसके चारों ओर बैठी महिलाओं ने उसे उस रात संभाला।

*पहली बार उस शृंगारदानी में इतनी शांति थी। वहाँ मौजूद सुहाग का हर सामान चुपचाप बस बदहवास मुन्नी और उसके चीत्कार भरे आँसुओं को गिरते हुए देख रहा था। उनमें से किसी ने भी इस दिन की कल्पना नहीं की थी।*

और इस चीत्कार से शृंगारदानी भी अछूती नहीं रही। पहली बार उस शृंगारदानी में इतनी शांति थी। वहाँ मौजूद सुहाग का हर सामान चुपचाप बस बदहवास मुन्नी और उसके चीत्कार भरे आँसुओं को गिरते हुए देख रहा था। उनमें से किसी ने भी इस दिन की कल्पना नहीं की थी।

शृंगारदानी में मौजूद इस सन्नाटे को तोड़ा महावर की पुड़िया ने। उसने सिंदूरदानी से कहा –

“दीदी, हमें बचा लो। आपसे हाथ जोड़कर विनती है, हमें बचा लो। अगर आज राजू न उठा, तो राजू की मौत के साथ इस शृंगारदानी में मौजूद हर शख्स की मौत हो जाएगी। आप कहती थीं न, आपके होते हुए राजू को कुछ नहीं हो सकता, आपके होते हुए मुन्नी हमेशा सुहागन रहेगी। तो फिर

दिखा दीजिए आज अपना जादू। दिखा दीजिए अपनी जादुई शक्तियाँ। बचा लीजिए हमें। बचा लीजिए।"

और इस तरह सिसकते-सिसकते, महावर की पुड़िया चुप हो गई।

और जवाब के तौर पर सिंदूरदानी की आँखों से दो आँसू गिरे, और उसके बाद फिर से शृंगारदानी में सन्नाटा पसर गया।

उस दिन के बाद से शृंगारदानी फिर कभी नही खुली।

# २६-कहानी का सिरा

घर में आज ख़ुशी का माहौल है, रंग-बिरंगी झालरों से आँगन सजा हुआ है। दरवाज़े और खिड़कियों को फूलों की बंदनवार से सजाया गया है। घर का हर कोना फूलों की ख़ुशबू से महक रहा है। घर की रसोई स्वादिष्ट पकवानों की ख़ुशबू से भरी पड़ी है। मेहमानों का ताँता लगा हुआ है। और इन सब के पीछे की वजह है — इस घर के इकलौते बेटे दिनेश की शादी। इस घर की चौखट बड़ी ही बेसब्री से अपनी होने वाली दुल्हन के इंतज़ार में बैठी है।

यूँ तो कहने को दिनेश और मैं दोनों एक ही घर में रहते हैं, लेकिन अब हमारे बीच कोई ख़ास नाता नहीं है। लेकिन ऐसा हमेशा से नहीं था। जब दिनेश बहुत छोटा था और अपनी माँ की गोद में बैठकर खेलता था, तब मेरी चमक उसे बहुत भाती थी। और वह मुझे अपने नन्हे-नन्हे हाथों से पकड़कर मुँह में दबाने की कोशिश करता था। यूँ समझिए कि मैं उसके लिए किसी खिलौने से कम नहीं थी।

और जब दिनेश थोड़ा सा और बड़ा हुआ तो अक्सर अपनी माँ से पूछा करता था —

"माँ, आपके हाथों में ये जो कंगन है, सोने के हैं क्या?"

तब उसकी माँ बोलती — "हाँ, बिल्कुल खालिस सोने के हैं।"

तब दिनेश दुबारा पूछता — "ये आपके पास कहाँ से आए?"

तब उसकी माँ कहती — "जब तेरे पापा और मेरी शादी हुई थी, तब तेरी दादी ने ये कंगन मुझे दिए थे मुँह-दिखलाई में।"

लेकिन जैसे-जैसे दिनेश बड़ा हुआ, वैसे-वैसे हमारे बीच की नज़दीकियाँ घटती गईं। समय के साथ दिनेश की माँ ने भी मुझे पहनना कम कर दिया। अब ज़्यादातर समय मैं अलमारी में ही बंद रहती हूँ।

लेकिन लगता है कि मेरा अकेलापन अब ख़त्म होने वाला है। दिनेश की दुल्हन के रूप में मेरी ज़िंदगी में एक नया हमसफ़र आने वाला है। दिनेश की दुल्हन न केवल दिनेश की ज़िंदगी और इस घर में अरसे से फैले सन्नाटे को ख़त्म करेगी, बल्कि इन सब के साथ ही मेरी ज़िंदगी में भी ख़ुशियों की बहार लाएगी। और ये बात मैं दावे के साथ इसलिए कह सकती हूँ क्योंकि मेरे साथ ऐसा पहली बार नहीं हो रहा है। समय अपने आप को दोहरा रहा है। और इस दोहराव को समझने के लिए आपको मेरी कहानी जाननी होगी।

वैसे तो मेरी कहानी काफ़ी लंबी है, न जाने कितनी पीढ़ियों में फैली हुई है। लेकिन फिर भी आज की बात पूरी करने के लिए अगर मेरी कहानी का सिरा जानना है, तो वह शुरू होता है दिनेश की दादी की शादी से। दिनेश की दादी ब्याह के बाद गाँव के पुराने वाले घर में आई थीं। मुझे आज भी वो दिन अच्छी तरह से याद है, जब दिनेश की परदादी ने मुँह-दिखलाई के शगुन के तौर पर मुझे दिनेश की दादी के हाथों में पहना दिया था। दिनेश की दादी मुझे रोज़ाना पहनती थीं — अगर मैं कहूँ कि मेरे बिना उनका श्रृंगार अधूरा रहता था, तो इसमें कोई बड़ी बात नहीं होगी। दिनेश की दादी मेरा बहुत ख़्याल रखती थीं और मुझे हिफ़ाज़त से रखती थीं। हर

साल सुनार के पास ले जाकर मेरी सफ़ाई करवाती थीं। सोने से पहले मुझे अपने हाथों से निकालकर दीवार में बनी अलमारी में रख दिया करती थीं।

एक शाम की बात है। रोज़ की तरह बिस्तर पर जाने से पहले दिनेश की दादी ने मुझे अपने हाथों से निकालकर अलमारी में रख दिया। लेकिन सुबह जब वे नहा-धोकर मुझे दुबारा पहनने के लिए गईं तो पता चला कि एक कंगन ग़ायब है। बहुत ढूँढने के बाद भी उन्हें कंगन नहीं मिला। मुझे न पाकर दिनेश की दादी पूरे दिन परेशान रहीं और उन्होंने खाना भी नहीं खाया। शाम को जब दिनेश के बाबा खेत से वापस आए, तब दादी ने रोते-रोते मेरे खोने की बात बताई।

तब दिनेश के बाबा बोले — "अरे पगली, रोती क्यों हो? सुबह जब मैं सोकर उठा, तो देखा कि एक कंगन नीचे पड़ा था। मैंने उसे उठाकर अलमारी के ऊपर रख दिया था।" और इतना कहते हुए उन्होंने अलमारी के ऊपर से मुझे उठाकर दिनेश की दादी की कलाइयों में पहना दिया। और उस क्षण जो ख़ुशी मैंने दिनेश की दादी की आँखों में देखी, वह फिर कभी दोबारा नहीं देखी।

एक बार दिनेश के बाबा शहर गए तो वहाँ से लकड़ी का एक सुंदर डिब्बा लेकर आए। उस डिब्बे पर लकड़ी को काट-काटकर बहुत ही सुंदर आकृतियाँ बनी हुई थीं। डिब्बे के अंदर लाल रंग का मख़मली कपड़ा भी लगा हुआ था। बाबा ने उसे लाकर दिनेश की दादी के हाथों में रख दिया और बोले — "यह हमारी शादी की सालगिरह का तोहफ़ा है। आज से अपने कंगन अपनी कलाइयों से निकालकर इसमें रखा करो।" दिनेश की दादी वह तोहफ़ा पाकर बहुत खुश हुईं। और उनसे ज़्यादा खुश मैं थी,

क्योंकि पूरे दिन नाज़ुक कलाइयों पर सजने के बाद मुझे आराम करने के लिए मख़मली गद्दा जो मिल गया था।

बहरहाल, इन हसीन लम्हों के बीच एक दिन ऐसा मनहूस पल आया जिससे मेरी ज़िंदगी बदल गई। हुआ यूँ कि एक सुबह दिनेश के दादा जी बिस्तर से सोकर उठे ही नहीं और हमेशा के लिए सोते रह गए। उस दिन जब दिनेश की दादी ने मुझे अपने हाथों से निकाला, फिर कभी उन्होंने मुझे अपनी कलाइयों पर नहीं सजाया। और सज़ा के तौर पर मुझे उस लकड़ी के डिब्बे में बंद कर के हमेशा के लिए अलमारी में रख दिया गया।

और मेरी ये सज़ा पूरी हुई दिनेश के पिताजी की शादी पर। दिनेश की माँ के घर आने के अगले दिन ही दादी ने मुझे उस डिब्बे से निकालकर बहू को देते हुए कहा — "ये पुश्तैनी कंगन हैं, हमारी शान हैं। हमेशा इन्हें अपने हाथों में पहन कर रखना।" और दिनेश की माँ ने हिचकिचाते हुए मुझे अपने हाथों में पहन लिया।

दिनेश की माँ मुझे अपनी सास की तरह रोज़ नहीं पहनती थीं। किसी शादी-ब्याह, तीज-त्योहार या कहीं आते-जाते समय ही मुझे अपनी कलाइयों में सजाती थीं। लेकिन जब तक दिनेश छोटा था, तब तक वे मुझे रोज़ लगभग पहनती थीं। फिर वक़्त के साथ लोगों के शौक भी बदलने लगे। एक रोज़ दिनेश की माँ ने अपने पति से कहा — "ये कंगन

*दिनेश के पिताजी ने बड़े ही प्यार से दिनेश की माँ को समझाया — "देखो, माँ के दिए ये कंगन केवल गहने भर ही नहीं हैं, ये उनकी यादें हैं, उनके प्यार की निशानी हैं, हमारी पीढ़ियों की विरासत हैं।*

बहुत पुराने हो चुके हैं, क्यों न इन कंगनों को गलवाकर नए डिज़ाइन की सोने की चूड़ियाँ बनवा लें?"

ये सुनते ही मेरे पैरों तले ज़मीन खिसक गई। और मैं सोचने लगी कि क्या मेरी ज़िंदगी इस दुनिया में बस यहीं तक थी?

लेकिन इस बीच दिनेश के पिताजी ने बड़े ही प्यार से दिनेश की माँ को समझाया — "देखो, माँ के दिए ये कंगन केवल गहने भर ही नहीं हैं, ये उनकी यादें हैं, उनके प्यार की निशानी हैं, हमारी पीढ़ियों की विरासत हैं। अगर तुम्हें सोने की चूड़ियाँ चाहिए, तो मैं नई चूड़ियाँ दिलवा दूँगा। लेकिन दुबारा कभी माँ के इन कंगनों के बारे में ऐसा मत कहना।"

उस दिन के बाद से दिनेश की माँ के मन में ऐसा विचार तो नहीं आया, लेकिन नई सोने की चूड़ियाँ आने के बाद मेरी उनकी कलाइयों पर से पकड़ कुछ कम हो गई थी। ज़्यादातर मेरा समय उस लकड़ी के डिब्बे में, लाल मख़मल के कपड़े पर पड़े-पड़े, इसी इंतज़ार में बीतता कि कब मेरा नया हमसफ़र आएगा, जो मुझे दिनेश की दादी की तरह मोहब्बत करेगा।

और शायद अब समय फिर से खुद को दोहरा रहा है। और शायद मेरा इंतज़ार अब ख़त्म होने वाला है।

एक और बात — जिस तरह मेरी कहानी की कोई स्पष्ट शुरुआत नहीं मिल रही थी, तब दिनेश की दादी की शादी को हमने कहानी का सिरा माना था। उसी तरह यह मेरी कहानी का अंत नहीं है — बस एक और सिरा है।

# २७- घर से मकान तक

# (एक सफ़र)

मित्तल साहब के बंगले के दाईं और बाईं तरफ़ आलीशान बंगलों की क़तार थी। एक से बढ़कर एक ख़ूबसूरत और आलीशान बंगले। लेकिन उन बंगलों के पीछे एक ख़ाली सरकारी मैदान था। पिछले कुछ २५-३० सालों से उस मैदान में कई परिवार अपनी झुग्गियाँ बनाकर रहते थे। एक झुग्गी बिलकुल मित्तल साहब के बंगले की पीछे वाली दीवार से सटी हुई थी, उसमें गिरीश अपने परिवार के साथ रहता था।

गिरीश के परिवार में दो छोटे बच्चे, उसकी बीवी और उसके बुज़ुर्ग पिता थे। गिरीश मित्तल साहब के ठीक सामने वाले बंगले में चौकीदार की नौकरी करता था। इससे पहले गिरीश निर्माणाधीन इमारतों में दिहाड़ी मज़दूर की तरह काम करता था। कुछ समय तक उसने रिक्शा भी चलाया। लेकिन पिछले २ सालों से चौकीदार की नौकरी कर रहा है। गिरीश के बुज़ुर्ग पिता मैदान के ही एक कोने में चाय की दुकान चलाते हैं। गिरीश के दोनों बच्चे अभी छोटे हैं इसलिए गिरीश की बीवी लक्ष्मी झुग्गी में रहकर ही उनकी देखभाल करती है।

मित्तल साहब के आलीशान तीन मंज़िला बंगले में कुल १२ कमरे हैं, जिनमें कुल मिलाकर ३ लोग रहते हैं—मित्तल साहब, उनका इकलौता बेटा देवेंद्र और उनके घर में काम करने वाला नौकर पप्पू। दिन के समय

में बंगले की रखवाली करने वाला चौकीदार और मित्तल साहब की देखभाल करने वाली नर्स भी रहती है।

दिवाली से पहले की बात है। मैदान में स्थित सभी झुग्गियों की साफ़-सफ़ाई ज़ोरों पर थी। झुग्गियों में रहने वाला हर परिवार अपनी हैसियत के हिसाब से झुग्गी की मरम्मत, साफ़-सफ़ाई करवाने में व्यस्त था। गिरीश भी लक्ष्मी के साथ अपनी झुग्गी की मरम्मत और साफ़-सफ़ाई के काम में लगा था।

लेकिन मित्तल साहब के आलीशान बंगले में कोई हलचल न थी। मित्तल साहब का बंगला झुग्गियों में होने वाली दिवाली की तैयारियों की हलचल को देखकर अंदर ही अंदर जल रहा था लेकिन दुखी भी था। उसे बंगले में पसरा सन्नाटा और उससे पैदा हुई मनहूसियत अंदर ही अंदर खाये जा रही थी। अपनी सीलन और पपड़ी से भारी दीवारों को देख उसे रोना आ रहा था। बंगले को उदास देख गिरीश की झुग्गी को बंगले पर तरस आ रहा था। गिरीश की झुग्गी ने बंगले से बात करने का मन बनाया।

यूँ तो मित्तल साहब के बंगले को ख़ुद पर बहुत गुमान था, और पीछे मैदान वाली झुग्गियाँ इसे फूटी आँख नहीं सुहातीं। लेकिन गिरीश की झुग्गी से वो कभी-कभार बतिया लेता था। लेकिन ऐसा हमेशा से नहीं था, कुछ सालों पहले तक उसे गिरीश की झुग्गी से सख़्त नफ़रत थी, उसे ऐसा लगता था कि गिरीश की झुग्गी उसकी सुंदरता पर धब्बा है। लेकिन पिछले कुछ सालों से उसके ख़ुद के हालातों की वजह से और जब से गिरीश के घर में बिटिया ने जन्म लिया है, तब से वह गिरीश की झुग्गी के साथ बतिया लेता है, अपने सुख-दुख साझा कर लेता है।

झुग्गी: क्या हुआ भाई? इतने उदास क्यों हो?

बंगला: कुछ नहीं हुआ, और न कुछ बचा है मेरे पास कहने को।

झुग्गी: मैं पिछले कई दिनों से देख रही हूँ तुम्हें, इतना उदास और खामोश तो पहले कभी नहीं देखा।

बंगला: कुछ नहीं बहन, बस मेरे दिन कुछ अच्छे नहीं चल रहे। और ऊपर से मैदान में त्योहार की हलचल देख, हमेशा रोने को मन करता है।

झुग्गी: ऐसा क्यों?

बंगला: त्योहार आने को है, लेकिन हमारे यहाँ मातम पसरा पड़ा है। न कोई साफ़-सफ़ाई, न कोई मरम्मत, न रंग-रोगन। कोई नहीं है मेरी सुध लेने वाला। घर में न कोई हलचल है न त्योहार की कोई गहमागहमी। ऐसा लगता है जैसे कि घर नहीं मुर्दाघर है। घर के कई कमरों के दरवाज़े न जाने कब से बंद पड़े हैं। कमरों की छतें जहाँ-तहाँ मकड़ी के जालों से पटे पड़े हैं।

झुग्गी: अरे पहले तो बहुत चहल-पहल रहती थी तुम्हारे यहाँ। कहाँ गए घर के सब लोग?

बंगला: तुम सही कहती हो बहन, वो भी क्या समय था कि मेरी दीवारें बच्चों के शोरगुल और औरतों की पायलों की छन-छन की गवाह बना करती थीं। दिन की शुरुआत मालकिन के भजन से हुआ करती थी। मित्तल साहब पूरे दिन अपने पोते के साथ खेलते रहते थे। देवेंद्र से मिलने कोई न कोई आता रहता था।

और त्योहारों की रौनक की तो क्या ही कहने। दिवाली पर महीनों पहले ही तैयारियाँ शुरू हो जाती थीं। हर साल घर की साफ़-सफ़ाई, मरम्मत और रंग-रोगन होता था। घर की दीवारों को अलग-अलग रंगों से रंगा जाता था। घर का हर दरवाज़ा फूल और पत्तों की बंदनवार से सजाया जाता था। घर के आँगन में देवेंद्र की बीवी तरह-तरह की सुंदर रंगोलियाँ बनाती थी। घर की बाहरी दीवारों को अलग-अलग रंगों की बिजली की लड़ियाँ अपनी रोशनी से जगमग करती थीं।

और होली पर तो मालकिन आँगन में महीने भर पहले ही होली धर देती थीं। और होली वाले दिन आँगन में एक बड़े से ड्रम में पानी में रंग घोलकर रख दिया जाता था। मित्तल साहब को होली खेलने का बड़ा शौक़ था। पूरे दिन हुड़दंग रहता था और होली मिलने आने वालों का ताँता लगा रहता था।

(फिर ये सब बताते-बताते बंगला चुप हो जाता है।)

झुग्गी: तो फिर क्या हुआ ऐसा जो बंगले की रौनक को नज़र लग गई?

बंगला: सब कुछ सही चल रहा था। लेकिन अचानक से एक दिन इस घर की मालकिन यानी कि मित्तल साहब की धर्मपत्नी इस दुनिया को छोड़कर चली गईं। वह मेरी (बंगले) की रौनक भी अपने साथ ले गईं। और उनके जाने के बाद मित्तल साहब भी बीमार रहने लगे और अपनी पत्नी के ग़म में हमेशा के लिए बिस्तर पकड़ लिया। और रही-सही कसर पूरी कर दी देवेंद्र और उसकी पत्नी के तलाक़ ने। मालकिन के गुज़रने के बाद देवेंद्र और उसकी पत्नी में अनबन रहने लगी। और ये अनबन तलाक़ पर जाकर रुकी। लेकिन इस तलाक़ से ज़्यादा बड़ा झटका यह था कि

तलाक़ की शर्तों के हिसाब से देवेंद्र का बेटा उसकी पत्नी के साथ चला गया। मालकिन के गुज़रने के बाद बची-खुची रौनक देवेंद्र के बेटे के कारण थी और अब वो भी इस घर से चला गया। उस दिन के बाद से इस घर में मनहूसियत का जो साया पसरा, वो अब तक न हट पाया है।

(यह कहते-कहते बंगले की आँखों से आँसू आने लगे।)

झुग्गी बंगले का ढाँढस बँधाते हुए: रो मत भाई। सब ठीक हो जाएगा। हर दिन एक-सा नहीं रहता। अभी बुरा वक़्त चल रहा है, तो अच्छा वक़्त भी आएगा। बस अपना और अपने घर के सदस्यों का ख़्याल रखो।

बंगला: और तुम बताओ बहन, कैसी चल रही है तैयारियाँ?

झुग्गी: बस कुछ ख़ास नहीं। जिस पर जितना बन पड़ता है, उसी हिसाब से तैयारियाँ चल रही हैं। हमारे मैदान में तो मरम्मत और सफ़ाई के नाम पर हवा में उड़ गए टीन और तिरपाल को सही करने की कोशिश करते रहते हैं। अपनी-अपनी झुग्गी को अंदर और बाहर से झाड़-बुहारकर गोबर से लीप देते हैं। बाक़ी कुछ लोगों ने अपने पास से चंदा करके पूरे मैदान में रंग-बिरंगे कागज की झंडियों की बंदनवार लगवाई है।

*वो भी क्या समय था कि मेरी दीवारें बच्चों के शोरगुल और औरतों की पायलों की छन-छन की गवाह बना करती थीं। दिन की शुरुआत मालकिन के भजन से हुआ करती थी। मित्तल साहब पूरे दिन अपने पोते के साथ खेलते रहते थे।*

बंगला: और गिरीश के परिवार के क्या हाल हैं? उसकी बिटिया कैसी है?

झुग्गी: सब ठीक ही हैं! सब मेहनत-मज़दूरी करके ईमानदारी से अपने परिवार को पालने की कोशिश में लगे रहते हैं। अभी गिरीश के पिता जी की तबियत ख़राब रही थी कुछ दिनों। दोनों मियाँ-बीवी ने कोई कसर नहीं छोड़ी उनकी सेवा करने में। अब ठीक हैं, चाय की दुकान पर फिर बैठने लगे हैं पिता जी। अभी गिरीश के गाँव से कुछ मेहमान आए हुए हैं। शायद उसकी बहन और भांजे हैं। तीनों बच्चे पूरे दिन झुग्गी में धमाचौकड़ी मचाकर रखते हैं। गिरीश की बिटिया बिलकुल स्वस्थ है। अगले महीने २ साल की हो जाएगी।

बंगला: मेहमान! मुझे तो दरवाज़े की दस्तक सुने हुए न जाने कितने महीने बीत गए। उस चौकीदार और नर्स के अलावा किसी ने घर की चौखट पर कदम नहीं रखा है पिछले कुछ महीनों में।

बहन, एक बात बोलूँ?

झुग्गी: बताओ?

बंगला (आँखों में आँसू लिए): पहले मैं घर था, लेकिन अब मैं केवल मकान रह गया हूँ। वीरान खंडहर-सा।

(झुग्गी ख़ामोश से देखती रही, और बंगला धीरे-धीरे सम्भलने की कोशिश करता है।)

बंगला अपने आँसू पोंछते हुए फिर से इस खामोशी को तोड़ता है: बहन! क्या ऐसा नहीं हो सकता कि दिन में थोड़ी बहुत देर के लिए गिरीश के

बच्चे मेरे आँगन में खेलने आ जाया करें? जिससे मेरी दीवारों को थोड़ी राहत मिले।

झुग्गी: ऐसा हो तो सकता है, लेकिन तुमने अपने दरवाज़े तो झुग्गी वालों के लिए हमेशा से बंद कर रखे हैं। और तुम्हारे चाहने से भी क्या होगा, जब तक इस घर के लोग न चाहें।

बंगला: बहन, बस तुम कुछ ऐसा कर दो कि बच्चे यहाँ तक आ जाएँ, बाक़ी मैं संभाल लूँगा।

झुग्गी: ठीक है, मैं पूरी कोशिश करूँगी।

(अगले दिन जब तीनों बच्चे झुग्गी के सामने गेंद से खेल रहे थे, तो खेलते-खेलते उनकी गेंद झुग्गी के तिरपाल के ऊपर गिर गई। जब इस बीच बच्चे एक बाँस के सहारे गेंद उतारने की कोशिश कर ही रहे थे कि अचानक से एक बहुत तेज़ हवा का झोंका आया जिसके कारण तिरपाल पैराशूट की तरह हवा में उड़ने लगा, उस पर पड़ी गेंद उछलकर मित्तल साहब के बंगले के अंदर गिर गई।)

तीनों बच्चे डरते-डरते मित्तल साहब के बंगले के सामने पहुँचे। बच्चे चौकीदार से गेंद माँगने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे। इससे पहले कि बच्चे चौकीदार से कुछ बोल पाते, उससे पहले ही बंगले के दरवाज़े खुल गए। और सामने देवेंद्र हाथ में गेंद लेकर खड़ा था।

देवेंद्र ने उन बच्चों को अंदर बुलाया और बोला, “ये गेंद तुम्हारी है न?”

तीनों बच्चों ने हाँ में सर हिला दिया।

देवेंद्र अपने हाथों में गेंद को बार-बार उछालते हुए बोला, “ये गेंद मैं तुम्हें तभी दूँगा जब मुझे भी अपनी टीम में साथ खिलाओगे।”

ये सुनकर तीनों बच्चे खिलखिलाकर हँसने लगे। और फिर देवेंद्र ने गेंद बच्चों की तरफ़ फेंक दी। बच्चे भी गेंद को लेकर बंगले में ही खेलने लगे। आँगन में दौड़ने लगे, शोर मचाने लगे। और देवेंद्र भी उनके साथ बच्चा बन गया था।

अपने आँगन में बच्चों का शोरगुल सुन बंगला फूला नहीं समा रहा था। और सबसे ज़्यादा तो ख़ुशी इस बात की थी कि देवेंद्र भी बच्चों के साथ मिलकर ख़ुद भी बच्चा बन गया था।

और जब कुछ देर बाद बच्चे जाने लगे तब देवेंद्र ने बच्चों से बोला, “तुम लोग रोज़ यहाँ खेलने आ जाया करो, मैं भी तुम्हारे साथ खेला करूँगा।”

और ये सुनते ही बंगले ने फिर से अपनी वीरान दीवारों में एक घर की ख़ुशबू को महसूस किया। और उसने मन ही मन झुग्गी का धन्यवाद किया।

# धन्यवाद

इस किताब को आकार देने में जितना मेरा हाथ है, उससे कहीं ज़्यादा उन आवाज़ों का है — जो कभी सुनी नहीं गईं, और उन मौन चीज़ों का — जो हमारे आसपास रहकर भी अनदेखी रह गईं।

मैं उन सभी निर्जीव और अमूर्त पात्रों का आभार मानता हूँ, जो मेरे साथ चुपचाप चलते रहे, और अंततः इस किताब में अपनी जगह बना सके।

मेरे परिवार का, मित्रों का, और उन सभी पाठकों का धन्यवाद — जिन्होंने मेरे लेखन के पहले प्रयास को समझा, सराहा और संबल दिया।

उन लोगों का भी शुक्रिया, जो मेरे लेखन में कमियाँ ढूँढ़ेंगे, क्योंकि वही मुझे बेहतर बनने की दिशा दिखाएंगे।

इस सफ़र में मैंने खुद को भी नए रूप में जाना है — और इसके लिए मैं इस कलम का शुक्रगुज़ार हूँ, जिसने मेरी खामोशियों को भी आवाज़ दी।

आप सभी का स्नेह और आशीर्वाद बना रहे — यही मेरी सबसे बड़ी सफलता है।

सृजन

# मन का कोना

इस किताब के सफ़र के बाद जो भी भाव, स्मृतियाँ या शब्द आपके भीतर बचे रह गए हैं, उन्हें यहाँ सहेज सकते हैं —-